श्री भागवत-दर्शन

भागवती कथा

(उनसठवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
संकीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर (झूसी), प्रयाग

संशोधित मूल्य २.० रुपये
संशोधित मूल्य

प्रथम संस्करण] वैशाख सम्वत् २०११ वि० [मूल्य १॥- २

मुद्रक—भागवत प्रेस, प्रतिष्ठानपुर, प्रयाग ।

भागवती कथा—खंड ५९

विषय-सूची

—::०::—

गोहत्या बन्दी राज्य के द्वारा ही होगी

नमो ब्रह्मण्य देवाय गोब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।

छप्पय

गोहत्या जहँ होहि तहाँ शुभ करम न होवे।
गोहत्या तें मनुज सकल पुण्यादिक खोवें॥
गोतन-मंदिर माँहिं बसें सुरगन मिलि सबई।
गोमाता तन कटै भगें सुर तहँ ते तबई॥
गोहत्या करि जगत महँ, यश कोई नहि पाइयो।
गोहत्या जिहि राज महँ, हाने सो मिटि जाइयो॥

आज सबत्र गोरक्षा का प्रश्न एक आवश्यक विचारणीय प्रश्न बन गया है आज ही नहीं, यह प्रश्न सनातन है, गो हमारी दृष्टि में पशु नहीं वह पृथिवी माता भूदेवी का प्रतीक है। भूमाता का पूजा हम गौके ही रूपमें करते हैं। भूमि पर जब जब भी विपत्ति पड़ी तब तब वह गौ का ही रूप बन कर भगवान के निकट गयी। गो हमारे इह लोक और परलोक के आहार की अधिष्ठातृ देवी है। हमें इहलोकमें भोजन और परलोकमें पुण्य गोमाता की ही कृपासे प्राप्त होता है। गौ स्वयं तृण खाकर दूध देती है, जिससे दही, मठा, घृत, खोया, मावा छेना, पनीर, खुरचन, मक्खन आदि

ब्रह्मण्यदेव भगवान् को नमस्कार है, गौ और ब्राह्मणों का हित करने वाले प्रभुको नमस्कार है, सम्पूर्ण जगत् का हित करनेवाले श्री कृष्ण को नमस्कार है और जो गौओं के इन्द्र हैं गौओंके रक्षक हैं, उन गोविन्द भगवान् को बार बार नमस्कार है।

अनेक स्वादिष्ट पौष्टिक पदार्थ बनते हैं, गौओं के-बच्चे बैल खेती करके हमें अन्न साकभाजी, मसाले, दाल आदि देते हैं। इस प्रकार रोटी, दाल, भात और साक तो हमें गौ माताके पुत्र बछड़ों से मिलता है। और इधर दही, घृत, मक्खन तथा खोया की अनेक मिठाइयाँ प्रत्यक्ष गौमाता से मिलती हैं। यह तो इस लोककी बात हुई। अब परलोककी सुन लीजिये।

गर्भाधान संस्कार से लेकर दाहसंस्कार तक ऐसा एक भी संस्कार नहीं जिसमें गो-दानकी आवश्यकता न पड़ती हो, अब तो समय के फेर से प्रत्यक्ष गो-दान न देकर उसके बदलेमें ५) १।) रुपये या पांच आने का गौ-दान करा देते हैं, किन्तु विधि प्रत्यक्ष गौ-दान की ही है। हम हिन्दुओं का विश्वास है, कि मरने पर जो वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है वह गौ की पूंछ पकड़ कर ही पार की जा सकती है। अतः प्रत्येक धर्मप्राण हिन्दु मरते समय अब भी कम से कम एक गौ का दान तो करता है। इस प्रकार गौ इस लोकमें भी हमारा उपकार करती है और मरने पर हमें वैतरणीसे पार करती है। ऐसी गौ को जो मारता है, वह अपने इहलोक तथा परलोक के समस्त सुकृतों-पुण्यकर्मों को नष्ट करता है जिस राज्यमें गौ का वध होता है। वह राज्य आध्यात्मिकता से दूर हटता जाता है, वहाँ के निवासियोंको मानसिक शांति नहीं होती, वे आध्यात्मिकतासे हीन-अशांत संशयालु तथा भोगी होते हैं। जो राष्ट्र गौरक्षा में प्रमाद करता है। वह इस संसारमें यश और श्री से हीन हो जाता है। भारतने गौ के महत्व को आजसे नहीं, अनादि कालसे समझा है। वेदोंमें उपनिषदोंमें, पुराणों में सर्वत्र गौ की महिमा गायी गयी है। जब तक भारतीय शासन रहा तब तक गौवध के समान अपराध माना जाता था। जब विधर्मी विदेशी आततायी आक्रमणकारी इस्लाम धर्मावलम्बी लोगोंने इस देशपर आक्रमण किये, तब उन्होंने हिन्दुधर्मको नष्ट करनेके

अनेक उपाय किये। जैसे यहाँके धार्मिक ग्रन्थों को जला देना, हिन्दुओंके मन्दिरों को तोड़ना, बलपूर्वक लोगों को मुसलमान बना लेना उसी समय केवल हिन्दुओं की धार्मिक भावनापर आक्रमण करने के लिये उन्होंने गौ का वध आरम्भ कर दिया। पीछे जब मुसलमान यहाँ बस गये और इसी देशके हो गये तो उनमेंसे अनेक राजाओंने राजाज्ञा निकाल गौ वध बन्द कराया था जिनमें हुमायुँ, अकबर, बहादुरशाह तथा अन्य कई राजाओंका नाम विशेष उल्लेखनीय है, इसके अनन्तर मराठा तथा सिक्खोंका राज्य हुआ, ये राजा तो केवल गौ ब्राह्मण का रक्षार्थ ही उदय हुए थे, इनके राज्यमें तो सर्वथा गोवध बन्द था ही।

अंगरेजों ने हिन्दुत्व को मिटानेका प्रयत्न तो किया, किन्तु बहुत छिपकर शनैः शनैः किया। अंगरेजी राज्यमें गोवध होता तो था, किन्तु नियमित संख्या में नियमके भीतर होता था। इसे मिटानेके लिये आरम्भ से ही बड़े बड़े प्रयत्न किये गये। लोकमान्य तिलक, महामना मालवीयजी, महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्दजी आदि महानुभावोंने गोहत्या रोकने के बहुत प्रयत्न किये। कांग्रेस के साथ गौ रक्षा सम्मेलन होते थे, महात्मा गांधीजीने खिलाफत के आंदोलनमें सहयोग देते हुए कहा था कि मैं मुसलमानों के इस आंदोलनमें इसलिये सहयोग देता हूँ, कि वे मेरी गौकी रक्षा करें। उनदिनों प्रायः सभी मुसलमानोंके मौलवीयों ने व्यवस्था दीथी, कि गौवध करना इस्लामधर्ममें आवश्यक नहीं। उन दिनों सभी मुसलमान नेता गोरक्षा का समर्थन करते थे। कांग्रेसी नेता तो यहाँ तक कहा करते थे, कि विदेशी वस्त्रों को इसलिये मत पहिनो कि इनमें गौकी चरबी लगती है। कुछ तो यहाँ तक कहते थे कि अंगरेजोंसे इसलिये असहयोग करना चाहिये कि ये गोहत्या कराते हैं। उन दिनों कांग्रेसी नेताओंकी गोभक्ति और गोरक्षा के विचारों को सुनकर सभी को पूर्ण विश्वास था, कि जिस दिन स्वराज्य

की घोषणा होगी उसी दिन गोहत्याबन्दी की भी घोषणा हो जायगी। लोग कहा भी करते थे-गोवधबन्दीकी बातें अभी क्यों करते हो, हत्याकी जड़ तो ये अंगरेज हैं, जिस दिन ये अंगरेज चले जायँगे, उस दिन एक लेखनी की नोंकसे गोवध बन्द हो जायगा।

भगवान्ने वह दिन दिखाया, स्वराज्य हो गया, अंगरेज भारत से चले गये, हमें आशा थी अब गोवध बन्द हो ही जायगा। इसलिये सरकार के पास इतने तार और पत्र आये कि उनकी गणना ही नहीं हो सकी केवल उनकी तोल की गयी। छ दिन तक पोष्ट आफिस में इतने अधिक तार आये कि उन्हें लेना कठिन हो गया।

तब तो शासकों की आँखें-खुलीं, उन्होंने कहा-हम गो रक्षाके लिये एक समिति बनाते हैं। तुम आंदोलन मत करो। उस समिति में हम गो रक्षा के समर्थकों को रखेंगे। समिति बनी, उसमें ६ सरकारी और ७ अ-सरकारी आदमी रखे। उस समितिने सुझाव दिया दो वर्षमें सर्वथा गोवध बन्द कर दिया जाय। उपयोगी पशुओंका वध तो तत्काल बन्द हो और दो वर्षमें बूढ़ी टेढ़ी लूली लंगड़ी गौओंके लिये गो सदन बनें।

समिति सरकारने ही स्थापित की थी, उसके सुझाव माननेको सरकार बाध्य थी, इसलिये सबको पूर्ण विश्वास हो गया कि दो वर्षमें यह गोवध -रूपी भारतके भालका कलंक अवश्य ही दूर हो जायगा। सब निश्चिन्त थे, आंदोलन करने की आवश्यकता ही नहीं समझी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, सरकारकी कूटनीति आगे आने लगी। अन्तमें सरकारने सभी प्रान्तीय सरकारों के पास एक गुप्त परिपत्र भेजा। आंदोलन के समय भारतीय संविधानमें एक धारा स्वीकार की गयी थी, जिसमें स्पष्ट स्वीकार किया गया था, कि सभी प्रकारकी गौओंका वध रोकना भारत

सरकारकी नीति होगी। जब आंदोलन ढीला हो गया, तो सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को आदेश दिया कि उस धाराका अर्थ उपयोगी गौ के वधोंको रोकने से है, अतः पूर्ण गौवध बन्द न किया जाय। जहाँ बन्द कर दिया हो, वहाँ उस पर पुनर्विचार हो। उससे स्पष्ट हो गया कि सरकार गौओंको कटानेके पक्षमें है। ऐसा भी मत व्यक्त किया गया, कि १०० में ६० गौएँ अनुपयोगी हैं। अनुपयोगी का अर्थ कम दूध देनेवाला, दुबली पतली, लूली लंगडी, बूढी, छोटी और न जाने क्या ?

हमारे पश्चिमीय सभ्यतामें पले हुए नेताओंका सुझाव था, कि लोगोंकी खाने की आदतोंमे परिवर्तन करके धार्मिक क्रान्ति करके फालतू गोवशको कटवा दिया जाय। उनके मासके उपयोगसे अन्न की बचत होगा, उनके चम, हड्डी, आते, सींग आदि को बेच कर विदेशी डालर कमाये जायँ।

इन सब बातो को सुन कर हमारी आँखें खुली। सरकार गोवध बंद न कराने के लिये कटिबद्ध है। प्रधान मंत्रीजी ने कृषिमन्त्रियोंके सम्मेलन में स्पष्ट कह दिया,—फालतू गोवंशका वध तो बंद नहीं हो सकता। इस भयसे कि ऐसा करने से लोग हमें मत-वोट-न देंगे। इस भयको निकाल देना चाहिये। अर्थात् हम इस आधार पर चुनाव लडने को तैयार हैं।

स्वराज्य को हुए लगभग सात वर्ष हो गये। गौवध को रोकना तो दूर रहा, उत्तरोत्तर बढता ही जाता है। बम्बई सरकार तो सबसे अधिक बढ़ गयी। उसने कसाईखानों की उन्नति कैसे हो, इसके लिये एक समिति बनायी। उस समिति के सुझावोंको आप पढेंगे तो आश्चर्यचकित हो जायँगे। उसने ऐसी बात बतायी है, गौ काटने से ऐसे नस निकाली जाय। अमुक वस्तुसे यह औषधि बनेगी। अर्थात् उसने खुल्लमखुल्ला गोवध करनेके उपाय बताये।

हमारी कांग्रेसी सरकारको गोवधबन्धी के नामसे चिढ़
इसका कहना है। गोरक्षा न कह कर गोसंवर्धन कहो। अ
गौओंका पालन करो, उनका दूध बढ़ाओ उनकी जाति सुधा
वंशवृद्धि करो। अनुपयोगी गौओं को कटा दो। अर्थात् जो क
हो सब तुम्हीं करो सरकार तो गौ काटने का ही काम करे
गौओंमें उपयोगी अनुपयोगी का भेद करके लोगों में भाँति भाँ
भ्रम फैलाये जाते हैं। लोगों को उलटी सीधी बातें बताकर पथभ्र
किया जाता है, अनेक शंकायें उठा कर गौवधका अप्रत्यक्ष र
से समर्थन किया जाता है। यहाँ पर हमें उन्हीं सब शंकाओं
समाधान करना है।

१. पहिली बात तो यह कही जाती है, कि गोवधबन्दीके लि
'नियम' बनाने की क्या आवश्यकता है? कसाइयों को गौएँ
हिन्दु ही बेचते हैं। हिन्दु कसाइओं को गौएँ देना बन्द कर
अपने आप गोहत्या बन्द हो जायगी। लोगों को समझाओ घ
घर, गौ रखें, कसाइयों के हाथ गौ न बेचें।

—हम कहते हैं—यदि लोग समझाने से ही माननेवाले हों
आप एक एक उपदेशक रख दें। लोगोंको शिक्षा दें, कोई लड़ा
न करें, चोरी न करें, नियमभंग न करें सबका भाग दे दें। फि
फौज, पुलिस, न्यायालय इन सबको समाप्त कर देना चाहिये
नियम है तो उन्हीं लोगोंके लिये होता है। जो उस नियम के भ
से अपराध न करें। जब चोरी जारी, लड़ाई सबके लिये नियम
तो गौहत्या न करने को नियम क्यों न हो।

२. कुछ लोग कहते हैं गौ तो पशु है, उसको मारने पर दन
की क्या आवश्यकता है?

—हम तो गौ को पशु नहीं मानते हैं। हम तो गौ को मात
कहते हैं। भारतीय संस्कृतिमें गौको देवता माना गया है। हमलोग
प्रतीक उपासक हैं। जैसे सभी जानते हैं। मंदिरों की प्रतिम

पाषाणकी होती हैं। किन्तु हम उनमें देवत्व भावना करते हैं। भारतीय दंडविधान में एक नियम है जो मूर्ति को तोडेगा उसे दंड दिया जायगा। यदि पाषाणकी मूर्तिको कोई दूसरे पाषाण से तोड देता है, तो उसे दंड इसी लिये दिया जाता है कि उसने मूर्तिपूजाओं की भावना को 'ठेस पहुँचायी, जब पाषाणकी मूर्ति को न तोडने का नियम है। तो जिस गौमें हम तेतीस कोटी देवताओंका वास मानते हैं, उसे जो छुरीसे काट कर हमारी भावनाओं,-पर आघात करता है, तो उसे दंड क्यों न दिया जाय ? उसके लिये नियमक्ष्कानन -क्यों न बनाया जाय ?"

३. कुछ लोग कहते हैं-हमारी घर की गौ है, हम उसे काटते हैं, इसमें दूसरोंका क्या है, इसके लिये कानून बनानेकी क्या आवश्यकता ?

हम कहते हैं, माता के पेटमें उसी का बच्चा है। उसे वह पैदा होते ही मार देती है तो उसे दड क्यों दिया जाता है ? हम स्वतन्त्र हैं आत्महत्या करने के लिये, किन्तु जो आत्महत्या करता है या करने का प्रयत्न करता है तो उसे दड क्यो दिया जाता है ? जब हम स्त्री, पुत्र भाई बन्धु तथा,अपने आप की हत्या करने मे स्वतंत्र नहीं, तो गौ जो हमारी सदा से पूजनीय है उसके मारनेमें क्यों स्वतंत्र हो सकते हैं ? तब इनके वध पर प्रतिबन्ध होना चाहिये।

४. कुछ लोग कहते हैं, ये सब भावुकताकी बातें हैं तर्कमें ये बाते सिद्ध नहीं होती। पशुने जब तक दूध दिया काममें रहा, बच्चा पाला पोसा जब अनुपयोगी हुआ, उसे मारकर उसका हड्डी चम, आंत आदि का उपयोग करो।

-हम कहते हैं, भावनाके विना तो कोई काम होता नहीं। राष्ट्रीयध्वजमें भावनाके अतिरिक्ति और क्या है। भावना निकाल देने पर वस्त्र का टुकडा मात्र है। महापुरुषोंकी समाधियों पर पुष्प क्यों चढाते हैं। मंदिरो में भावना ही तो है, अपने स्वजनों की

भस्मी को इतनी व्यय करके त्रिवेणीमें ले जाते हैं, इसमें भावना ही तो है। भावनाके विना मानवता नहीं। गौ के प्रति हमारी भावना ही है। वह भावना सौ दो सौ या हजारों लाखों की नहीं ३३ करोड़ हिन्दुओं की भावना है, प्रजातन्त्रीय सरकार को इतने लोगों की भावना की रक्षा करनी ही पड़ेगी।

५. कुछ लोग कहते हैं, कि यदि बूढ़ी, टेढ़ी गौएं काटी न जायें भी तो वे मारी मारी फिरेंगी, हरे भरे अन्न के खेतोंको खा जायँगी अन्न और चारे को बरामद करेंगी, अतः ऐसी गौ की रक्षा का आग्रह व्यर्थ है।

-हम कहते हैं यह लोगों का भ्रम है। नैपालमें गौवध करने वाले-को आजीवन कारावासका दंड है, वहाँ गोवध नहीं, मैं तो पार साल भी गया था और इस वर्ष भी गया, मुझे तो वहाँ एक भी ऐसी गौ मारे मारे फिरती नहीं मिली, राजस्थान विन्ध्यप्रदेश हिमाचल तथा देशके एक तिहाई भागमें, नियमसे गोवध बन्द है वहाँ ऐसी कोई समस्या नहीं। अतः यह कल्पना निर्मूल है। जो किसान पशु रखता है वह दो बूढ़े भी रख ही सकता है। यदि ऐसे कुछ पशु हों तो उनका पालन करना सरकारका कर्तव्य है। सरकार उनके लिये गोसदन बनवावे।

६. कुछ लोग कहते हैं-पहिले अनुपयोगी पशुओं के लिये गो सदन बनवाओ, गोचर भूमि छुड़वाओ, जब उनका प्रबन्ध हो जाय, तभी कानून बनाने की बात करो, इसके पहिले करोगे तो अनुपयोगी पशु कहाँ जायँगे।

हम कहते हैं गौ तो कभी अनुपयोगी होती ही नहीं। वह दूध और बच्चे न भी दे, तो उसके गोवर मूत्र से ही इतनी आय हो सकती है, कि उतना चारा वह खा भी नहीं सकती। पहिले प्रबन्ध करके गौवधबन्दीका नियम बनावें तो कभी हो ही नहीं सकता "न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।" अंगरेज भी तो यही

हते थे कि पहिले स्वराज्यका योग्यता प्राप्त कर लो तब स्वराज्य ोगो। यदि योग्यता की कसौटी उन्हीं पर छोड़ दी जाती जब तो ारत कभी स्वतन्त्र होता हा नहीं। पहिले गोवधबन्दी का नियम ना ओ, फिर जो जो असुविधायें आवें उनके निवारणका यत्न करो।

७. कुछ लोग कहते हैं-गौओं को इतना उपयोगी बना लो कि न्हें काटनेका साहस ही न हो। विदेशामें गौ मन मन भर दूध ेती हैं। ऐसी गौएँ यहाँ हो जायँ तो उन्हें कौन काटेगा ?"

हम विदेशी लोगोंकी भाँति गौ का पालन नहीं करते। दूसरे ेशो में गौ केवल दूध के लिये पाली जाती है। उसके बछड़े तो ाने के ही काममें आते हैं। खेती वहाँ घोड़ोंसे या अन्य साधनों से होती है। किन्तु हमारे पूर्वजोंने एक गौ से ही दोनों काम ले लिये। गोका दूध पाओ, उसके बच्चे-बैलसे खेती करके अन्न उपजाओ। विदेशामें बछड़ोंको, बूढ़ी गौओंको तथा कम दूध देने वालियों को मार कर खा जाते हैं, केवल दूध के ही लिये वो गौ पाली जाती है उसके बछड़े खेतके कामके अनुपयोगी होते हैं, हमें तो गौ से दूध भी लेना है, उसके बछड़ोंसे खेती भी करना है अपनी भावना की रक्षा भी करना है। यह तभी सम्भव होगा जब गोवधबन्दी का पहिले राजनियम बन जाय। रही उपयोगी अनुपयोगी की बात ? सो कसाईको सबसे अधिक आय हृष्ट-पुष्ट युवती गौ के वध से होती है। हरियाने आदि से अच्छी से अच्छी दूध देनेवाली गौ को कलकत्ते ले जाते हैं। जब तक वह दूध देती है। तब तक ग्वाला उसे रखता है। जिस दिन दूध देना बन्द करती उसी दिन उसे निकालनेकी चिंता करता है कलकत्ते जैसे बड़े नगर में ऐसी दूध न देनेवाली गौको रखनेको न स्थान है न ग्वाला। वर्ष भर उसे खिलाकर उसके अगले ब्याँह तक प्रतीक्षा कर सकता है। कसाई उसके यहाँ आता है एक दूधकी गौ देकर दो खिला

दूधको गौ उससे ले जाता है। वह गौ उसे २००) में पड़ी उसके चर्म मांस-हड्डी-आंत नसें रक्त आदि से उसी दिन ३ ४००) मिल जाते हैं। जिसमें एक दिनमें इतना लाभ हो ज ऐसे व्यापारको स्वेच्छा से कौन छोड़ना चाहेगा। जो गौ अप देशमें रहकर १०। १५ बच्चे देती है वह एक बच्चा देकर छुरी घाट उतार दी गयी। उसका बच्चा तो ग्वालेने जाते ही मार दि था। इस प्रकार राज्य नियम न बनने से अच्छी से अच्छी गौओ काभी अधिक ह्रास हो रहा है। आजसे २०। २५ वर्ष पूर्व हरिया में घर घर १५। १६ सेर दूध देने वाली गौएँ थीं। अब वे मः बम्बई कलकत्ता जाकर कट गयीं। अब कठिनता से ७। ८ सेर की गौएँ मिलती हैं, यदि यही क्रम बना रहा तो ये भी गौवे कट जाएँगी, फिर गौओं के दर्शन दुर्लभ हो जायँगे, इस लिये जब तक नियम कानून-नहीं बनता, तब तक न गोसंवर्धन हो सकता है, न गोवंश की वृद्धि हो सकती है, न जाति सुधार तथा दुग्धोन्नति हो सकती है।

८ कुछ लोग कहते हैं-यदि गौओंका वध बन्द कर दिया गया, तो चर्मका अभाव हो जायगा, सैनिकों को चर्म कहां से मिलेगा?

यह विचार करने की बात है, गौ तो एक ही बार मरेगी-एकबार ही चर्म देगी, चाहे उसे छुरी से काट कर चर्म ले लो या अपनी मौत से मरने के अनन्तर ले लो। मरे हुए पशुओंके चर्म से ही पहिले सब काम चलते थे और उन्हीं के जूते आदि सब व्यवहारमें लाते थे। जितनी गौएं हैं एक दिन सभी मरेंगी, उनके चर्म तुम्हें मिलेंगे ही।

इस पर कुछ लोग कहते हैं, काटे हुए पशु का चर्म कोमल होता है, मरे हुए पशु का अत्यन्त कठोर होता है, उसके कोमल जूते बैग आदि न बन सकेंगे।

हमारा कहना है, जिस विज्ञानने अणुबम जैसी वस्तु का आविष्कार कर लिया; क्या वह ऐसी कोई औषधि आविष्कार नहीं कर सकता जिससे मृतक चर्म कोमल हो जाय, मैंने सुना है जर्मनीमें ऐसे चर्मको मुलायम बनानेके लिये कार्यालय हैं। हम कहते हैं न हो कोमल चर्म, कठिनता से ही काम चलाया जाय या कागद गत्ता अथवा प्लाष्टिक की वस्तुओं से काम चले, किन्तु चर्म कोमल हो इसलिये गौ माताके गले पर छुरी चले यह उचित नहीं।

कुछ लोग कहते हैं जो गौयें इधर उधर फिरती रहती हैं, अन्न और बाजारके सामानको बिगाडती हैं. जहाँ जाती हैं वहाँ मार खाती हैं, भूखो मर जाती हैं, इससे अच्छा यही है, एक दिनमें उन्हें काट कर उनका भी दुःख दूर कर दिया जाय और उनके कोमल चर्म, मांस, हड्डी, नस, आंत, सींग आदि से आय बढ़ायी जाय।

यदि गोवध पर प्रतिबन्ध लग जाय और स्थान स्थान पर गोसदन खुल जायें तो ऐसी गौयें कहीं मिलेंगी ही नहीं। मान लो ऐसी गौयें भी हों और वे भूखों मरती भी हों, तो मैं यह अच्छा समझूंगा कि वे भूखों अपनी मौतसे तो भले ही मरें किन्तु वे कसाई की छुरी से न कटें इसका कारण यह है कसाई को ऐसी गौ चोरी से या तो बिनामूल्य मिल जाती है या अत्यन्त ही अल्प मूल्य पर। गौवध के कार्यसे मांस, हड्डी, चर्म, रक्त आदि के व्यवसायसे लगभग एक करोड़ आदमी पलते हैं उनमें अधिकांश गोमांसभक्षक विधर्मी कसाई ही होते हैं तो हम अपनी ही गौओंसे इतने गो हत्यारोंका पालन करके अपने ही पैरों कुल्हाडी क्यों मारें! हमें तो चाहें जैसे भी हो उसे अपनी ही मौत से मरने देना चाहिये। गौका एक बिन्दु रक्त भी इस भारतभूमि पर न गिरे।

१० कुछ लोग कहते हैं-केवल गोवध न करनेका नियम बनाने

से ही काम न चलेगा। यदि ऐसी ही दशा रही तो फिर कस
ग्वानेमें ता गौ कटेगा नहीं, घरोंमें लुक छिपकर और भी अ
गोवध होगा, इस लिये कानून बनाना व्यर्थ है।

"हम कहते हैं, लोग लुक छिपकर चोरी करते हैं। लोगों
ठगते हैं। फिर चोरी करने पर दंड देनेके नियम क्यों बने है
लुक छिपकर जो गोवध करे उसे कड़े के कड़ा दंड देना सरकार
धर्म है। जो सरकार इतनी निर्बल हो कि अपने नियमका दृढ़त
पालन नहीं करा सकती उसे शासन करनेका क्या अधिकार है
फिर नियममें अपवाद हो ही जाता है। बिना नियम बने गो
बन्द हो ही नहीं सकता।

११. कुछ लोग कहते हैं, कुछ जातियोंमें गोवध करना धर्म
हमारी सरकार धर्म निरपेक्ष है, वह दूसरेके धर्ममें कैसे हस्तक्षे
कर सकती है? ऐसा नियम बनाने से उसकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति
नष्ट होगी। इसलिये गोवधबन्दी का नियम बनाना सरकारक
नीतिके विरुद्ध है।

जहाँ तक मुसलमान और ईसाईओंके धर्मग्रन्थोंसे हमने सुन
हैं किसी के यहाँ गौवध करना धर्म नहीं आवश्यक नहीं। आसाम
प्रान्तकी कुछ जातियाँ ऐसी बताई जाती थीं, किन्तु हमने आसाम
में स्वयं जा कर देखा वहाँ कोई भी ऐसी जाति नहीं जिसके यहां
गोवध करना धर्म हो। इसके विरुद्ध हिन्दुओंके यहाँ गौका वध न
करना धर्म है, उनके जीवन मरण का प्रश्न है, उनकी संस्कृति
तथा परस्पर रक्षाका प्रश्न है, तो ऐसी दशामें गोवध कराते रहना
हिन्दुओं के धर्म में प्रत्यक्ष आघात करना है, सरकारकी धर्म
निरपेक्षताकी नीति स्वयं ही नष्ट होती है। ३३ करोड़ हिन्दुओंकी
धर्मभावना पर आघात पहुँचाना क्या यही धर्म निरपेक्षता है?
यह तो धर्मद्वेषता है।

१२. कुछ लोग कहते हैं। कि राज्य में बहुत से लोग नहीं

हते कि गोवधबन्दी का कानून बने तो उनके भावों के विरुद्ध
न सरकार कैसे बनावे ?

हम कहते हैं, बहुत से लोग तो मद्यनिषेध नियम बनाने के
रुद्ध हैं। बहुत से लोग जमींदारी उन्मूलन के विरुद्ध हैं, बहुतसे
ा हरिजनोंके मन्दिरप्रवेश तथा अस्पर्शता निवारण के विरुद्ध है
र सरकार इनके लिये नियम क्यों बनाती है, गोवध के पक्षमें
बहुत ही कम लोग होंगे।

१३ कुछ लोग कहते हैं यह प्रश्न तो प्रान्तों का है, प्रान्तीय
रकार चाहे तो अपने यहाँ नियम बना ले, केन्द्रीय सरकार को
यम बनाने की क्या आवश्यकता है ?"

प्रान्तीय सभी सरकारें नियम बना लें, तब तो गोवध बन्द हो
जायगा, किन्तु प्रान्तीय सरकारों को तो केन्द्रीय सरकार बाध्य
रती रहती है, तुम सर्वथा गोवध बन्दी का नियम मत बनाओ।
ान लो उन्हें केन्द्रीय सरकार स्वतन्त्रता भी दे दे और उनमें से
क दो भी नियम न बनावें तो सब व्यर्थ है। क्यों कि जो उत्तर
देशमें न कटी बम्बई या मद्रास में जाकर कट गयी। गौ की रक्षा
ा इससे नहीं हुई। इसलिये जब तक केन्द्रीय सरकार नियम
ना कर सम्पूर्ण देशमें गोवध बन्दी का आदेश नहीं देगी तब तक
ा की रक्षा नहीं हो सकती।

१४ कुछ लोग कहते हैं, हम गोवधबन्दी का कानून बना दें
ो अमेरिका आदि देश जिन्हें यहाँसे बछड़ों की काटी हुई गौ की,
ाले आंते आदि भेजी जाती हैं, वे हमसे अप्रसन्न हो जायँगे.
फेर हमें वे जो उन्नति के नाम पर सहायता देते हैं, उसे बन्द
कर देंगे।

हम कहते हैं इससे बढ़ कर मूर्खताकी दूसरी बात और हो
नहीं सकती। कि अपनी माता को कटा कर दूसरे देशों
प्रसन्नता प्राप्त करें। दूसरे देशवाले चाहें कि हम सब ईसाई

जायें तो क्या उन्हें प्रसन्न करनेको हमारी सरकार हमें ई
बनने का आदेश देगी ? हमें अपनी ओर देखना चाहिये, अ
हित अनहित स्वयं ही अपनी दृष्टि से सोचना चाहिय।

१५. कुछ लोग कहते हैं, मुसलमान अल्पसंख्या हैं, हमें उ
भावनाओं का आदर करना चाहिये। जिससे उन्हें दुःख न
ऐसे काम करना चाहिये।

आदर करते करते ही हम आधे देशसे हाथ धो बैठे, भ
का बहुत भाग विशुद्ध इस्लामी राज्य--हिन्दुत्व का विरोधी--
गया, अब भी हम वोटों के लिये--अल्प स्वार्थ के लिये हम अ
गौको कटवावें यह कितनी बुद्धिमानी होगी ?

ये सब बातें तो गौण हैं, यथार्थ बात तो यह है, कि
हमारा विशुद्ध धार्मिक प्रश्न है। धर्मका पालन घाटा सहकर
किया जाता है, अतः गोवध बन्द करने से कितना भी घाटा हो
यद्यपि घाटा नहीं और लाभ भी होगा, तब भी हमें उसे ब
करना ही पड़ेगा। गोवध बन्द करनेमें चाहें जितनी अड़चने ह
तैंतीस करोड़ हिन्दुओंकी धार्मिक भावना का आदर करना
पड़ेगा। जो सरकार गोवधका समर्थन करेगी उसे प्रोत्साहन देगी
वह भारतमें कभी टिक नहीं सकती। अतः गोवध पर अविलम्
प्रतिबन्ध लगाना चाहिये। गोवध बन्दीका नियम कानून--केन्द्रीय
सरकार को शीघ्रसे शीघ्र बनाना चाहिये। यदि सरकार ऐसा न
करे तो इसके विरुद्ध जनमत तैयार करके प्रबल आंदोलन
करना चाहिये।

यदि शासक शास्त्र को मानता हो, तो उसे शास्त्रीय बात
बताकर मनाया जा सकता है' यदि शासक धार्मिक हो तो उसे
धर्मका मर्म बताकर मनाया जा सकता है, यदि कोई पूर्ण त्यागी
तपस्वी हो, तो शासक को चमत्कार दिखाकर शाप वरदान देकर
मनाया जा सकता है, यदि दो राष्ट्र हों तो अस्त्र शस्त्रों से युद्ध

एक मनाया जा सकता है। आज कोई एक अपने को राजा
नता नहीं, प्रजातन्त्र का ढोंग तो रचा जाता है। किन्तु वास्तवमे
जातन्त्र के भी शासनमे धमकी उपेक्षा की गयी है, धर्मनिरपेक्ष
ासन घोषित किया गया है, कोई च्यवन ऋषि की भाँति त्यागी
पस्वी सिद्ध पुरुष भी दिखाई नहीं देता जो इन शासकों के
लमूल का निरोध कर दे, जिससे ये तुरन्त मान जाये। यह
रकार आन्दोलन करके ही मनाया या हराया जा सकता है,
अतः हमें गोरक्षा के लिये, भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये
प्रबल आन्दोलन करना चाहिये।

एक बात और है, मुसलमानोंने गोके प्रश्न को राज्य हडपने
का साधन बना लिया, काग्रेसियोंने भी अपने चुनावका चिन्ह
बैलोंका जोडा रखकर इसे चुनाव जीतने का साधन बनाया-गौ
हमारी माता है, यह हमारा विशुद्ध धार्मिक प्रश्न है इसलिये इस
पर धार्मिक दृष्टि से ही विचार करना चाहिये। कैसे भी हो,
धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी दृष्टि से गौ रक्षा
आवश्यक है, चाहे जैसे हो, हमारे देशसे गोवध बन्द होना
चाहिये। इसके लिये सभी भारतीय नर नारियों को सभी प्रकारका
बलिदान करना चाहिये। कोई भी काम बलिदान के बिना होता
नहीं, अतः गोरक्षाके लिये बलिदान करने के लिये सबको उद्यत
होना चाहिये। अपना गला कटा कर, गौ को बचाना चाहिये,
अपने गले पर छुरी चलवा कर गौ के गले से छुरी हटानी
चाहिये। महाराजा दिलीपने गौको बचानेके लिये सिंहको अपना
शरीर अर्पण कर दिया था, इसी प्रकार हमें वधशालाओं-
कसाईखाना मे जाकर अपना शरीर अर्पण कर के गौओंको
बचाना चाहिये। रेल पर गौ कटने जाती हों उन्हें जाने नहीं देना
चाहिये। रेलमें नहीं चढने देना चाहिये, चढ गई हो तो उन्हें उतार
लेना चाहिये, कसाई के हाथों कभी भूलकर भी गौ न बेचनी

चाहिये, जो बेचता हो, उसे सब प्रकार से समझा बुझाकर गो
चाहिये। सामर्थ्यवान् पुरुषों को ऐसी छुड़ाई हुई गौओंकी
का प्रबन्ध करना चाहिये। इसी प्रकार सभी भाई गौओंकी र
लिये कटिबद्ध हो जायँ तो फिर किसीकी भी शक्ति नहीं, भार
एक भी गौका रक्त बिन्दु गिरा सके।

अन्तमें मेरी सभी भाई बहिनोंसे यही प्रार्थना है कि उन्हें
मन, धनसे त्याग करके विविध प्रयत्न करके गौकी रक्षा क
धर्मलाभ करना चाहिये। भगवान नन्दनन्दन गोपालके पादप
में प्रार्थना है कि वे शीघ्र भारतमें गोवध बन्द करा दें। गोमाता
जय! गोमाताकी जय!! गोमाता की जय!!!

छप्पय

गोकी रक्षा होइ जाइ सब धारें चितमें।
गोवध होवे बन्द होइ आनन्द जगतमें॥
गौ के हित सब त्याग करें तन, मन धन देवें॥
लोक और परलोक माहिं अक्षय फल लेवें॥
गोपालक गोविन्द प्रभु, गैयनिकी रक्षा करो।
गोवध करिकें बन्द अब, 'भारत माँ के' दुःख हरो॥

———

कंकवंश का वर्णन

(१३४२)

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्कका: ।
भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैवतु ।।*

(श्री भा० १२ स्क० १ अ० ३० श्लो०)

छप्पय

कंक करिकें कुमर राज सब भये भूमिपति ।
ये सब सोलह वंश भये राजा शुभ मति अति ।।
राजपूत सब सूर्य चन्द्रवंशी मिलि आये ।
देश विदेशी भेदभाव तजि क्षात्र कहाये ।।
कंक कुमर ने एक करि, यवननि तें रक्षा करी ।
यों वर्णाश्रम धर्म की, कछु भावी विपदा हरी ।।

उन्नति अवनति, उत्थान पतन तथा जन्म मरण ये एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। जिसने शरीर धारण किया है, वह चाहे मनुष्य हो, देवता हो असुर हो और की तो बात ही क्या चाहे

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इसके अनन्तर आठ यवन चश चौदह तुरुष्क फिर दश गुरुण्ड और ग्यारह मौन नाम के राजा होंगे।"

भगवान् ने ही अवतार लेकर शरीर धारण क्यों न किया है
उत्थान पतन के थपेटे उन्हें भी सहन करने पड़ेंगे। जो चढ़े
वह गिरेगा। चढ़ना गिरने के लिये हैं। उत्थान पतन के नि
है। यदि बड़ों पर सदाचारियों पर विपत्ति न आती होती
इन्द्र को वार वार असुरों से हारकर पथ पथ का भिखारी क
बनना पड़ता। नल, राम, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र तथा अन्या
पुण्यश्लोक धर्मात्मा राजाओं को दुःख क्यों सहने पड़ते। जि
प्रकार व्यक्तियों का उत्थान पतन लगा रहता है उसी प्रकार रा
का भी उत्थान पतन होता रहता है। जो राष्ट्र आज से कुछ
सौ वर्ष पूर्व असभ्य और जंगली समझे जाते थे। जो समुद्र
मछली बीन बीनकर उन्हीं से निर्वाह करते थे। आर्य जाति
लोग जिनको नगण्य समझते थे, जिनसे सम्बन्ध रखना तो पृथ
रहा जिनको छूना भी पाप समझा जाता था। समय के फेर से
वे ही आर्यों के शासक बन गये और आर्यों को दास मानक
उनके साथ भाँति भाँति के अत्याचार करने लगे। आर्य ल
जिन्हें अपना शिष्य बनाने में भी अपमान समझते थे वे ह
आज गुरु बन गये और आर्य लोग उन्हें गुरु मानने में अपन
गौरव समझने लगे। जिन्हें हमने अस्पर्श, व्रात्य कह कर वे
वहिष्कृत कर दिया वे ही हम पर विजय प्राप्त करके हमारे
नियन्ता बन गये। इसी का नाम संसार चक्र है। आदर्श एक
रहता है उसकी क्रियायें बदलती रहती हैं।

वैदिक धर्म जब उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ था। तब
अन्याय अधर्म करने वाला कोई विरला ही मनुष्य होता था।
समाज को विशुद्ध बनाये रखने को उनको वर्ग से बाहर कर दिया
जाता था, जिससे पूरे समाज में दोष न आ जाय उस समय
अपराध की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी, किन्तु जब पूरे ही
समाज में दोष आ गये तो अपराधियों का वहिष्कार कौन करे।

ने वाले भी तो उन अपराधों से बचे नहीं। ऐसी दशा में
पराधों की उपेक्षा की जाती है। समाज एक सरल सा नियम
ना लेता है, जिसके अन्तर्गत रहकर हमारी बड़े अपराधों से
शा हो सके।

प्राकृतिक नियम बदलते नहीं, किन्तु अन्य नियम समय के
नुसार बदलते रहते हैं। समाज मिलकर जिसे स्वीकार कर
ता है फिर उसमें कोई दोष नहीं होता।

"सात पाँच मिलि कीजै काजा।
बिगड़ जाय तो आइ न लाजा॥"

पंचों का निर्णय परमात्मा को भी मान्य होता है।

सूतजी बोले—'महाराज! गर्दभी राजाओं के अनन्तर इस
श में ककों का आधिपत्य हो गया। ककों से आप वर्णाश्रम
हीन किरात, हूण, आभीर, अन्ध्रपुलिंद पुल्कसों के सदृश उन
कों का न समझें जिनकी गणना वर्णाश्रमियों ने पंचम वर्ण के
ोगों में की है। यह कक एक क्षत्रियों की जाति है। कक नामक
क अत्यन्त विद्वान्, बुद्धिमान देश कालज्ञ राजकुमार ने देशी
विदेशी क्षत्रियों को मिलाकर एक नवीन क्षत्रिय जाति बनायी।
जो उसी के नाम से कक कहलाये पीछे जो राजपुत्र या राजपूत
नाम के प्रसिद्ध हुए।"

बात है, कि काल का कारण राजा ही है। राजा
ही प्रजा को अधर्म से बचा सकता है। जैसे राज्य होगा वैसी
ही उसकी प्रजा होगी। पहिले इस देश में वर्णाश्रमियों का राज्य
था। जो लोग वर्णाश्रम को नहीं मानते थे वे वर्णाश्रमेतर या
पंचम कहलाते थे। वर्णाश्रमियों में से भी जो अपराध के कारण
या किसी अन्य कारण से वर्णाश्रम से निकाल दिये जाते उनकी
गणना पंचमों में की जाती। वैदिक वर्णाश्रम धर्म के जोड़ तोड़
का कोई दूसरा धर्म तो था ही नहीं। इससे जो बहिष्कृत हुए,

वे अपने को धर्महीन मान कर अमक्ष्यों की भाँति समय वि
स्वभावानुसार वैदिक धर्म में जो यहाँ धार्मिक कृत्य करते
उन्हें ही विकृत भाव से पुरोहित और ब्राह्मणों के अभाव में
होता वैसे करते। किन्हीं किन्हीं के साथ पुरोहित भी चले
वे उन्हें यज्ञयागादि भी कराते, उनके मन्त्रादि भी कुछ भि
जाते। जैसे पारसी आर्य ही हैं, वे वैदिक वर्णाश्रमियों की
अग्नि पूजन हवन आदि करते हैं, किसी रूप में यज्ञोपवीत
धारण करते हैं, किन्तु विदेश में जाने से उनकी प्रक्रिया भिन्न
गयी है।

कालान्तर में वैदिक वर्णाश्रम के समकक्ष का
धर्म उत्पन्न हो गया। सौभाग्य की बात कि यह पवित्र भार
में ही उत्पन्न हुआ। जिसे आज से दो ढाई सहस्र वर्ष पूर्व
सभी देश अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से देखते थे। वैदिक धर्म की सी
सीमित थीं। उसमें अनार्य संस्कारहीन नहीं घुस सकते थे।
नहीं जो इस सीमा में रहकर कोई नियम विपरीत काम
उसे बिना संकोच कान पकड़कर इससे बाहर निकाल
जाता। साधारण आदमी ही नहीं बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा इ
पृथक कर दिये जाते। इसका वर्णन पुराणों में बहुत आता
महाराज ययाति ने अपने राज्य के अधिकारी सबसे बड़े
राज को वेद वहिष्कृत कर दिया तथा अपने और भी तीन
को वर्णाश्रम धम से निकाल दिया। सगर के समय बहुत
राजा वहिष्कृत किये गये। इनमें से बहुत से राजा तो वि
में चले गये। कैसे भी सही फिर भी ये थे तो राजकुमार
राजा जहाँ जायगा वहीं राज्य करेगा, इन लोगों ने देश वि
में अपने राज्य स्थापित किये। राजा तो ये बन गये फिर
इनको यह अपमान तो सदा खलता ही रहा कि हम धर्म
कर दिये गये हैं, हम किसी धर्म के अधिकारी नहीं हैं।

बौद्ध धर्म ने अपनी उन्नति के लिये अपनी परिधि बढा दी। उन्होंने अपने समाज में आने के लिये सबके लिये मार्ग खोल दिया। सभी देशवासी भारत के धर्म में सम्मिलित होने के लिये लालायित थे। जब तक बौद्ध धर्म को भारत के सम्राटों ने स्वीकार नहीं किया तब तक देश विदेशों में कहीं भी उसका प्रचार या प्रसार नहीं हुआ। अत्यन्त त्यागी कुछ भिक्षु इधर से उधर धर्मोपदेश करते फिरते थे। जब भारत के सम्राटों ने इस धर्म को विवश होकर स्वीकार कर लिया। विवश वे इसलिये हुए कि वे विशुद्ध क्षत्रिय नहीं थे। वर्ण संकर थे। फिर भी अपने बाहुबल से राजा बन बैठे थे। राजा होने पर भी ब्राह्मणगण उनका आदर नहीं करते थे उन्हें शूद्र ही कहते थे। प्रतिष्ठित होने की आचार्य उपदेशक बनने की सबकी लालसा रहती है चाहे वह छोटा बड़ा हो, तिरस्कृत हो सम्मानित हो। जब ये राजागण बौद्ध बन गये तो बौद्ध धर्माचार्य इनका अत्यधिक आदर करने लगे। बौद्ध धर्म को ब्राह्मणों ने और विशुद्ध क्षत्रियों ने स्वीकार नहीं किया। पीछे क्षत्रिय और कुछ ब्राह्मण भी सम्मिलित हो गये। बौद्ध धर्म यद्यपि वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार नहीं करता था, फिर भी उसमें ब्राह्मण क्षत्रियों के लिये गौरव था शब्दों से नहीं मन से वे उनकी महत्ता को मानते थे। जब बौद्ध भिक्षु भारत के सम्राटों द्वारा सम्मानित होकर विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने गये और उन्होंने घोषणा की कि भारतीय धर्म का द्वार सब वर्ण और सब जाति के लोगों के लिये खुला है तो सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी लोग धार्मिक बनने को लालायित थे। सब के सब बौद्ध हो गये। भारतवर्ष में भी बौद्ध धर्म की ही प्रधानता हो गयी। इतने पर भी सनातन वैदिक वर्णाश्रम धर्म नष्ट नहीं हुआ क्योंकि उसकी जड़ें अत्यत सुदृढ थीं क्यों न हों जब तक राजसत्ता अपने हाथ में न हो

तब तक कोई भी धर्म टिक नहीं सकता। नंद वंश के समय से ही विदेशी भारत पर आक्रमण करने लगे थे और उनका भारत की सीमा पर कुछ अधिकार भी हो गया था। बौद्ध धर्म का प्रचार होने पर और अशोक द्वारा उसे अपनाने पर राजागण सब बौद्ध ही हो गये। कुछ राजा वैदिक धर्मावलम्बी भी थे।

जब बौद्ध भिक्षुओं का नैतिक स्तर गिर गया और वे विषय भोगों की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होने लगे तब त्याग प्रधान ब्राह्मण धर्म ने उसे दबा दिया। राजाओं की श्रद्धा भी बौद्ध धर्म से हट गयी। विदेशी वीर जो भारत को विजय करने आते वे बौद्ध बन जाते, क्योंकि उनके लिये यह मार्ग खुला था। बौद्ध धर्म में भक्ति के लिये स्थान बहुत ही कम था। या तो वे लोग ईश्वर के सम्बंध में उदासीन थे या उसका खंडन करते थे। उसमें भी कई सम्प्रदाय महायान हीनयान आदि हो गये। उस त्रुटि को पूरी करके ईसामसीह ने ईसाई धर्म का प्रचार किया। जैसा बौद्ध धर्म में हुआ था कि पहिले बौद्ध केवल धर्मोपदेशक ही थे पीछे राज्य शासन में भी अपना अधिकार जमाने लगे। वैसे ही ईसाई धर्म भी आरम्भ में धर्म प्रचारक ही था। पीछे वह योरोप में राजधर्म हो गया।

इधर अरब में मुहम्मद साहब ने मुहम्मद धर्म इस्लाम धर्म का प्रचार किया। उनसे पूर्व वहाँ भारत की ही भाँति अनेक देवी देवताओं की पूजा होती थी। मुहम्मद साहब ने इनका विरोध किया और उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। मुसलमान धर्म भी आरम्भ में केवल प्रचार करने वाला निःशस्त्र अहिंसात्मक वर्ग था। शनैः शनैः जब इसके हाथ में सत्ता आ गयी तो इसने तलवार के बल से धर्म का प्रचार किया। जहाँ जो ये लोग जाते मूर्तियों को तोड़ते मन्दिरों को नष्ट करते लोगों को दास गुलाम बनाते। इस धर्म में ऐसी मान्यता है

गयी कि जो हमारे धर्म (इस्लाम) को नहीं मानता वह नीच (काफिर) है। उसे मारने में कुछ दोष नहीं। दोष ही नहीं काफिर को मारने में बडा पुण्य होता है। और जो उसे मार देता है या मुसलमान बना लेता है उसे बडा पुण्य (सवाब) मिलता है। इसी भावना से प्रेरित होकर ये इस्लाम धर्म को बढाने को भाँति भाँति के अत्याचार करते। ससार में जितनी क्रूरतायें इस्लाम धर्म को बढाने के लिये की गयी हैं उतनी किसी भी धर्म के प्रचार के लिये नही की गयीं।

इस्लाम धर्म के अभ्युदय के समय में यहाँ भारत मे बौद्ध धर्म पतन की ओर जा रहा था उसके स्थान पर सनातन वैदिक धर्म का प्रभाव बढता जाता था। अब वैदिक धर्मावलम्बियो ने बौद्ध धर्म से कुछ शिक्षा ग्रहण की। अब उसने अपना द्वार दूसरे धर्मावलम्बियों के लिये और विदेशियो के लिये भी खोल दिया। सम्पूर्ण देशवासी बौद्ध हो चुके थे। उन्हें पुन शुद्ध करके वर्णाश्रमी बनाया गया। इसके लिये भगवान् शकराचार्य ने बहुत उद्योग किया। बहुत से राजाओं की सहायता से बौद्ध धर्म को नष्ट किया। जो ब्राह्मण बौद्ध हो गये थे, उन्हें पुनः शुद्ध किया। वे लोग अपना गोत्र भी भूल गये थे। पडितों ने उनका शकराचार्य गोत्र स्थिर किया। विहार में अब भी बहुत से शकराचार्य गोत्र के ब्राह्मण विद्यमान हैं।

राजपूताने म हरिश्चन्द्र नामक ब्राह्मण प्रतिहार था। उसकी क्षत्रिय पत्नी से क्षत्रिय प्रतिहारों का उत्पत्ति है। उन्हीं प्रतिहारों में कुकु या कक्क नामक एक प्रतिहार बडा ही विद्वान दूरदर्शी हुआ है। उसने देखा कि इस्लाम धर्म की अग्नि भारतवर्ष को नष्ट कर देगी तो उसने समस्त देशी सूर्य चन्द्रवशी राजाओं को बुलाकर सबकी एक नयी क्षत्रिय जाति बनायी। इससे (हूण, गुर्जर, वैश्य, क्षत्रप, प्रतिहार, कुशान, गुप्त परमार, नाग,

तोमर, गुहिल, चौलक्य, चौहान आदि सभी राज करने वाली जातियाँ थीं। जिनका सम्बन्ध सूर्य या चन्द्रवंश से था वे तो सब सूर्य चन्द्रवंशी कहलाये और जो हूण नये ही नये आये थे उनकी कंक संज्ञा हुई। ये सब मिलकर यवनों के आक्रमण को रोकने के लिये सन्नद्ध हुए। सबकी इच्छा थी कि भारतवर्ष में ऐसे हिंसा प्रधान धर्म का प्रसार न हो। यहाँ के मठ मन्दिरों में अतुल सम्पत्ति थी। देश धन धान्य से पूर्ण था। उस समय प्रधान प्रधान सोलह राजवंशोंने ऐसा दृढ़निश्चय किया। इस निश्चयसे विदेशी तो भारतीयों में मिल गये, किन्तु क्षत्रियों को डर था, वह होकर रहा। यवनों ने इस पवित्र देश पर आक्रमण किया और समय के फेर से उन्होंने आर्यजाति पर जो जो अत्याचार किये, जिस जिस प्रकार इसके मठ मन्दिरों और देवताओं का अपमान किया, मुनियो! वह अत्यन्त ही रोमाञ्चकारी वर्णन है उसका मैं वर्णन कर नहीं सकता। इसलिये आप सोलह कंकों से सोलह क्रमशः कंक वंश के राजाओं को न समझें। इसका यही अर्थ लगावें, कि उन दिनों किसी एक वंश का अधिपत्य नहीं था। कंक के उपलक्षण मात्र समझें। गर्दभियों के पश्चात् हूणों का तथा अन्या-न्य क्षत्रियों का भारत में आधिपत्य रहा।

इस्लामी धर्म की उत्पत्ति विक्रम सम्वत् ६६७ में अरब में हुई। लगभग सौ वर्षों तक तो वे मध्य एशिया के अन्य देशों में प्रचार करते रहे। विक्रमी संवत् ७६३ में यवनों ने मुसलमानी धर्म के प्रचार के निमित्त भारत पर आक्रमण करना आरम्भ किया। पहिले तो ये लोग लूट खसोट करने ही यहाँ आते थे और लूट खसोट कर चले जाते थे, फिर शनैः शनैः उन्होंने इस देश पर अपने पैर जमाने आरम्भ किये।

गान्धार देश के समीप ही गजनी एक छोटा सा राज्य है प्रथम वहाँ के राजा ने भारत पर चढ़ाई की, तदनन्तर उसके

पुत्र महमूद गजनी ने तो इतने अत्याचार किये और इतने देव-मन्दिर नष्ट किये, कि उन्हें स्मरण करके रोम रोम काँप उठते हैं। मुनियो ! दोष किसे दिया जाय यह तो समय का फेर है। अब क्षत्रियों का बल घट गया। इस देश पर यवनों का आधिपत्य हो गया। अब जिस प्रकार यवन और तुरुष्कवंश का इस देश पर आधिपत्य हुआ उसका वर्णन मैं अत्यन्त ही संक्षेप में आगे करूँगा। आप सब समाहित चित्त से इस रोमाञ्चकारी वर्णन को श्रवण करें।

छप्पय

यवननि करयो प्रवेश नष्ट मठ मन्दिर कीये।
लूट्यो अगनित द्रव्य विधरमी कछु वरि लीये॥
तुरक गुलामनि सौंपि गयो अपनी रजधानी।
मरयो जाय, फिर बने गुलामहु भूपति मानी॥
यवननि के कछु वंश पुनि, बने आततायी नृपति।
अति ई निरदय दस्यु सम, अन्यायी अति क्रूर मति॥

यवन तुरुष्क और गुरुंड

(१३४३)

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दश वर्ष शतानि च ।
नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥*
(श्री भा० १२ स्क० १ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

होनी ह्वैकें रही यवन भारत चढ़ि आये ।
देवालय करि नष्ट लूटि धन देश सिधाये ।।
पुनि यवननि अधिकार कर्यो कुल आठ भये नृप ।
फिरि क्रम तें कछु तुरक भये जब छीन भयो तप ।।
फेरि फिरंगी नृप भये, पश्चिम दिशितें आइ कें ।
बनिया तें राजा भये, यवननि आर्य लड़ाइ कें ।।

यह संसार त्रिगुणमय है । जब जिस गुण की वृद्धि होने क समय होता है, तब भगवान् उसी गुण में अपनी विशेष शक्ति सन्निहित कर देते हैं । जब तमोगुण का प्राबल्य होता है तब

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! आभीर, गर्दभी, कङ्क, यवन, तुरुष्क और गुरुण्ड ये सब नृपतिगण एक सहस्र निन्यानवे वर्ष पृथिवी का भोग करेंगे और ग्यारह मौन, तीन सौ वर्ष राज्य करेंगे ।

असुर बढ़ जाते हैं। वे इतने अजेय हो जाते हैं, कि फिर उन्हें भगवान् के अतिरिक्त कोई जीत हो नहीं सकता। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष रावण कुम्भ कर्ण, कंस जरासन्ध आदि के समय क्या सत्व प्रधान ऋषि मुनि नहीं थे। नारदादि भगवान् के अवतार नहीं थे। परन्तु इनकी कुछ भी नहीं चली वे लोग मनमानी करते रहे। कितने ऋषि मुनियों को ये लोग मारकर खा गये। कितनी कुलवती सतियों के सतीत्व को इन्होंने नष्ट किया। गौ, ब्राह्मण तथा यज्ञयागों का विनाश किया। जब इनके अभ्युदय का समय बीत गया, तो इनका विनाश हो गया। भगवान् को जब जैसा करना होता है, तब वैसी ही प्रकृति के पुरुषों में शक्ति भर देते हैं। जब यज्ञयागों के नाम से लोग अपनी वासना को पूर्ण करने को आवश्यकता से अधिक हिंसा करने लगे विशुद्ध यज्ञ न होकर दंभ यज्ञ होने लगे। तब स्वयं भगवान् ही बुद्ध रूप से यज्ञों का खंडन करने को अवतीर्ण हुए। और यज्ञयागों को बंद ही कर दिया। किन्तु जब भगवान् बुद्ध के नाम से भी कदाचार और दुराचार को आश्रय दिया जाने लगा तब भगवान् शंकराचार्य रूप से अवतीर्ण होकर बौद्ध सम्प्रदाय का ही भारत से अन्त कर दिया।

जब धर्म के नाम से लोग मठ मन्दिरों में नाना भाँति के अन्याय करने लगे। मठ मन्दिर वासना पूर्ति के अड्डे बन गये तो भगवान् ने आसुरी शक्ति को बढ़ाया। आततायी दस्युधर्मी यवन इतने प्रबल हो गये कि अनेक क्षत्रिय राजा के रहते हुए भी उन्होंने उन भगवान् की प्रतिमाओं को तोड़ दिया जिनके सम्मुख कोटि कोटि जन श्रद्धा भक्ति से मस्तक नवाते थे। इसे भगवान् की इच्छा के अतिरिक्त हम और कह ही क्या सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! हम पहिले ही बता चुके हैं,

कि गुप्तों के अनन्तर राजपूतों के कई वंशों का भारत के भिन्न-भिन्न खंडों पर आधिपत्य हो गया और वे परस्पर में लड़ने भिड़ने लगे। सीमाप्रान्त की ओर से यवन लोग आआकर भारत में इस्लामी धर्म का प्रसार करने के लिये अपना राज्य स्थापित करने लगे कुछ सिन्ध में आकर जम गये।

विक्रमी सम्वत् १०३४ में एक अमीर सुबुक्तगीन ने भारत पर चढ़ाई की। उसने सिन्धु नदी के पश्चिमी प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया और यहाँ अपना एक राज्याधिकारी छोड़ अपनी राजधानी गजनी चला गया। जब वह मर गया तो उसका उत्तराधिकारी महमूद गजनी हुआ। पहिले तो ये सब लोग बलख बुखारे के राजाओं के आधीन माने जाते थे। अब गजनी के राजा अपने को स्वतन्त्र मानने लगे। अफगानिस्तान आदि सभी देश उसने अपने अधीन कर लिये सभी मुसलमानी नरपति गण उससे भय खाने लगे। उसके पिता ने भारत के कुछ भाग पर प्रथम ही अधिकार कर लिया था। उसे पता था भारतीय क्षत्रिय नृपतिगण परस्पर में ही लड़ते रहते हैं। भारत परम समृद्धिशाली देश है अतः उसने भारत पर चढ़ाई की मुनियो! यह कितने आश्चर्य की बात है कि यवन दस्यु यहाँ के देवालयों को नष्ट करे मूर्तियों को तोड़े धन का अपहरण करे और मारा न जाय इसे दैवेच्छा के अतिरिक्त और क्या कहें।

वह जिस देश को भी विजय करता वहाँ के मन्दिरों को नष्ट करा देता मूर्तियों को तुड़वा देता। विक्रमी सम्वत् १०८२ में उसने प्रभासपट्टन के सुप्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर को नष्ट करके उसकी मूर्ति के खंड खंड कर दिये। वहाँ से वह करोड़ों रुपयों का धन लूट कर ले गया। उसने कुछ प्रान्तों पर अपना अधिकार भी जमाया पीछे उसके वंशजों के निर्बल हो जाने पर भारतीय राजाओं ने उन भागों को छीन लिया। कुछ भागों पर उसके

वंशजों का भी स्वत्व रह गया था। लवपुर (लाहौर) में गजनी के राजाओं की ओर से एक शासनाधिकारी रहता था।

गजनी और हिरात देश के मध्य में गोर नामक एक छोटा सा देश था। उस पर भी यवनों का ही राज्य था ये सब यवन राजे आपस में भी लड़ने लगे। अब इनकी धर्मप्रसार की भावना तो विलुप्त हो गयी। सबकी भावना यह हो गयी कि भारत वर्ष सुवर्ण को उत्पन्न करने वाला पक्षी है। गजनी का राजा यहाँ से असंख्यों मन सुवर्ण ले गया था। गोर देश का राजा जब गयासुद्दीन गोरी हुआ तो उसकी भी लालसा हुई कि मैं भी भारतवर्ष पर चढ़ाई करके यहाँ के धन की लूट से ऐश्वर्यशाली बन जाऊँ। उसने अपने भाई शहाबुद्दीन गोरी को अपना सेनापति बनाकर भेजा। उसने भी यहाँ क्षत्रियों से युद्ध किया लूट-पाट की।

उस समय भारतवर्ष में चौहान राजपूतों की प्रबलता थी। इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर पृथिवीराज चौहान विराजमान थे। उनकी यवनों से कई बार लड़ाई हुई। कई बार उन्होंने यवनों को परास्त किया। उस समय ऐसा लगता था, कि अब यवन सदा के लिये इस पवित्र देश से चले जायँगे, किन्तु भावी प्रबल थी। काल को कुछ और ही कराना था। यवन सेनापति परास्त होने पर भी हतोत्साह नहीं हुआ। शहाबुद्दीन ने पुनः पुनः चढ़ाई की। अन्त में थाणेश्वर में भारत के अंतिम सम्राट् पृथिवीराज चौहान वन्दी बनाये गये और कारावास में ही उस वीर सम्राट का देहावसान हुआ मानों भारत का सूर्य ही अस्त हो गया। अब भारत में यवनों के भलीभाँति पैर जम गये।

शहाबुद्दीन गोरी तो अपने देश को लौट गया वह अपने दास (गुलाम) कुतुबुद्दीन ऐबक को जो उसका सेनापति भी था उसे यहाँ का राज्याधिकारी बना गया। उसने यवन राज्य का यहाँ

बहुत विस्तार किया। संयोग की बात शहाबुद्दीन गोरी जब लवपुर से लौट रहा था मार्ग में ही उसे गक्खर जाति के लोगों ने मार डाला। उसके अनन्तर उसका भतीजा गयासुद्दीन महमूद उसका उत्तराधिकारी हुआ। भारतवर्ष में तो कुतुबुद्दीन ऐबक (गुलाम वंश) यवन दिग्विजय कर ही रहा था। पीछे से गौर के राजाओं ने उसे भारत का राजा बना दिया। या वह स्वयं ही अपनी रणचातुरी और वीरता से राजा बन गया। जिस देश पर अब तक वर्णाश्रम धर्मावलम्बी क्षत्रियों का शासन था उस पर यवन के दासवंश (गुलामवंश) शासन हुआ। इसलिये आठ यवन वंशों में सर्व प्रथम वंश गुलामवंश हुआ। इसलिये शहाबुद्दीन गोरी को प्रथम भारत सम्राट् न कहकर गुलाम वंश के कुतुबुद्दीन ऐबक को प्रथम यवन सम्राट् कहना चाहिये।

कुतुबुद्दीन ऐबक विक्रमी सम्वत् १२०६ में दिल्लीश्वर बना और चार वर्ष राज्य करके सम्वत् १२१० में वह घोड़े से गिर कर मर गया। नियमानुसार उसका पुत्र आरामशाह सम्राट् हुआ, किन्तु ये तो दस्युधर्मी थे। इनके यहाँ वंश परम्परागत राज्य के प्रति श्रद्धा नहीं थी। इसलिये कुतुबुद्दीन ऐबक का भी दास (गुलाम का भी गुलाम) शम्सुद्दीन अल्तमस आरामशाह को बन्दी करके स्वयं राजा बन गया। यह यवनों का दूसरा वंश हुआ। इस गुलाम के भी गुलाम वंश में आठ राजा हुए। इनमें छटा राजा नासिरुद्दीन धर्मात्मा हुआ। आठवाँ राजा मुइजुद्दीन कैकूबाद हुआ इसके अनन्तर तीसरा खिलजीवंश का अधिकार हुआ। खिलजीवंश के ६ राजा हुए। फिर चौथा तुगलक वंश आया उसके भी दश राजा हुए। फिर पाँचवाँ सैय्यद वंश आया उसके चार राजा हुए फिर छटा लोदी वंश आया। उसके तीन राजा हुए। फिर सातवाँ (तुरुष्क वंश) मुगल वंश आया उसमें बाबर और हुमायूँ दो राजा हुए। हुमायूँ को परास्त करके चुनार-

गढ़ के राज्याधिकारी शेरशाह सूर ने उसका राज्य छीन लिया। इस प्रकार आठवाँ यवनों का वंश सूर वंश हुआ। इसमें पाँच राजा हुए। इस प्रकार यह आठ यवन वंशों का राज्य साढ़े तीन सौ वर्ष के लगभग रहा।

शेरशाह से पराम्त होकर मुगलवंशीय तुरुष्क हुमायूँ जो बाबर का पुत्र था ईरान चला गया वहाँ से सैन्य संग्रह करके वह भारत में आकर विक्रमी सम्वत् १६१२ मे पुनः भारत का सम्राट् हुआ और अन्त तक इसी वंश का राज्य रहा। इस तुरुष्क वंश के चौदह प्रतापी राजा हुए। पन्द्रहवें राजा के समय से गुरुण्डों का आधिपत्य हो गया। वैसे तो तीन राजा और भी इस वंश में नाम के हुए, किन्तु उन्हें राजा न कहकर गुरुण्डों (श्वेत हूणों फिरङ्गी और अङ्गरेजो) का वेतन भोगी ही मानना चाहिये। इसलिए इस वंश के चौदह ही राजा प्रधान हुए। इनमें पाँचवाँ राजा औरङ्गजेब अत्यन्त ही क्रूर हुआ। मुनियो! इन यवन राजाओं मे दो चार को छोड़कर सब बड़े क्रूर वैदिक आर्य धर्म के शत्रु गौ, ब्राह्मण द्वेषी मन्दिरों के विध्वंसक तथा आर्य धर्म के शत्रु हुए। इन्होंने आर्य धर्म पर जो जो अत्याचार किये उन्हें कहने की मेरी जिह्वा में शक्ति नहीं। कालात्मा भगवान् की कृपा से ही यह सब हुआ।

इस पर शौनक जी ने आँसू पोंछते हुए अत्यन्त ही दु:ख के साथ कहा—"सूतजी! किसी को कोई भी सुख दुख नहीं देता सभी अपने कृत कर्मों का फल भोगते हैं। सब के दिन एक से नहीं रहते। सब की सत्ता एक सी नहीं रहती। राज्यलक्ष्मी तो चञ्चला है, वह तो रथ के चक्र के समान ऊपर नीचे आती जाती रहती है। महाराज! अधिक उदारता का ही यह फल है, कि यवनों ने इस देश पर अधिकार कर लिया। यवनों ने आर्यों की धर्मभीरुता से अनुचित लाभ उठाया। आर्यों ने कभी ऐसी चेष्टा

नहीं की, कि विधर्मियों को अपने धर्म में मिलाया जाय। बौद्ध-धर्म तो विदेशी धर्म नहीं था इसलिये बौद्धों को मिला लिया गया। मुसलमानों के आने के पहिले धर्म के सम्बन्ध में तो यहाँ कोई मतभेद था ही नहीं। प्रतीत होता है, धार्मिक असहिष्णुता तो यवनों के आने पर ही हुई ?"

सूतजी ने कहा—"हाँ, महाराज ! यही बात है। आर्य वैदिक वर्णाश्रम सदा से उदार रहा है, इस धर्म ने कभी यह चेष्टा नहीं कि बलपूर्वक कोई हमारी मान्यताओं को स्वीकार कर ले। इस धर्म का तो मुख्य सिद्धान्त है ये "यथामां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" जो जिस भाव से भगवान् को भजता है भगवान् भी उसे उसी भाव से फल देते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पारसियों के प्रति की हुई उदारता ही है।

ईरान में पहिले भारतवर्ष से गये हुए आर्य ही बसते थे, वे यहाँ की भाँति देवी देवताओं को पूजते और अग्नि की उपासना करते थे। जब मुहम्मदी धर्म का प्रचार करने मुसलमान वहाँ पहुँचे तो वहाँ भी इन्होंने ऐसे ही अत्याचार किये। देवालयों को नष्ट किया और बल पूर्वक मुसलमान बनाने लगे। जो मुसलमान नहीं बनते थे उनकी तुरन्त हत्या करने लगे। प्राणों के भय से बहुतों ने धर्म छोड़ दिया और बहुत से मुसलमान बन गये कुछ परिवार जो धर्म को प्राणों से भी अधिक प्रिय मानते थे वे जल मार्ग से पोतों द्वारा भागकर भारतवर्ष में आ गये। भारत के राजा ने उनका स्वागत किया उन्हें स्थान दिया। कोई दूसर अनार्य क्रूर शासक होता, तो इन मुट्ठीभर लोगों को या त दास (गुलाम) बना लेता, या उन्हें अपने धर्म में दाखिल करता किन्तु भारत का तो सदाचार, प्रतिज्ञापालन और उदारता सद से ही परमधर्म रहा है। भारतीय नरेश ने उन्हें रहने को स्था दिया धर्म की स्वतन्त्रता दी और व्यापार करने की आज्ञा दी

अब तक वे पारसी के नाम से अवस्थित हैं। आज से लगभग १२००-१३०० वर्ष पूर्व जो अपनी पूजा की अग्नि लेकर वे अपने देश से आये थे, वह उनकी ज्यों की त्यों अक्षुण्ण बनी है किसी भारतीय नरेश ने कभी उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वे भारतीयों में ऐसे घुल मिल गये हैं कि इसी देश को वे अपना समझते हैं। यवनों के पश्चात् तुरुष्कों की प्राधान्यता रही।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! तुरुष्कों में और यवनों में अन्तर क्या है। एक बार तो आप तुरुष्कों की यवनों में गणना कर ही चुके हैं, फिर आप तुरुष्कों की गणना पृथक् क्यों करते हैं?"

इस पर सूतजी ने कहा—"महाराज! तुरुष्क भी यवनों के अन्तर्गत हैं। भारतीय आर्य धर्म को न मानने वाले दस्युधर्मी सभी यवन के नाम से पुकारे जाते हैं। इस देश में मुसलमानों ने आकर बहुत अन्याय और अत्याचार किया इसलिये यह शब्द मुसलमानों के ही लिये व्यवहृत होने लगे। वैसे तो जब मुसलमान धर्म की उत्पत्ति भी नहीं थी, तब भी सिकन्दर आदि जो यूनान आदि देशों से आये थे वे सब यवन कहलाते थे। पुराणों में किरात हूण, यवन सभी के नाम आते है। यहाँ यवन शब्द सभी सम्मिलित वंशों के लिये व्यवहार किया गया है, इसी लिये उनकी वंश परम्परा के राजाओं की गणना न करके उनके वंशों की ही गणना की गयी है। वास्तव में यवन यहाँ राज्य तो करते थे, किन्तु वे अपने को विधर्मी के साथ ही साथ विदेशी भी मानते थे। इसलिये एक दूसरे को मार कर राज्य को हस्तगत करने किसी वंश के दो राजा हुए किसी के चार किसी के दस। इसलिये इन सब की पृथक् पृथक् गणना न करके एक में ही कर दी।

बाबर का पुत्र हुमायूँ भी ८-९ वर्ष राजा रहा। उसे सूरवंशी

यवनों ने मार कर भगा दिया और स्वयं राजा बन बैठे। १६ वर्ष में पाँच राजा सूरवंश के भी हो गये। अन्त में हुमायूँ ने आकर फिर सूरवंशियों से अपना राज्य छीन लिया और भारत को ही अपना स्वदेश समझकर राज्य करने लगा। ये लोग तुर-किस्तान के थे। आर्य जाति के ही वंशज थे। इसलिये ये दस्यु-धर्म छोड़कर भारतीय राजाओं की भाँति न्याय पूर्वक राज्य करने लगे। अर्थात् ये कुलीन राजवंशों की भाँति प्रजा के हित का ध्यान रखने लगे। यहाँ तक कि हुमायूँ का पुत्र अकबर तो वैदिक धर्म में दीक्षित होने को भी उद्यत था, किन्तु भारतीय प्रथम ठगे जा चुके थे। उन्हें इन यवनों का कटु अनुभव था। इसलिये उस की इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। फिर भी उसने आर्य कन्याओं से विवाह किया। उन रानियों का धार्मिक स्वतन्त्रता थी। उसका जो पुत्र जहाँगीर हुआ उसने भी भारतीय आर्यकन्या से विवाह किया उसका पुत्र औरङ्गजेब अत्यन्त खल और भारतीय वैदिक धर्म का द्वेषी हुआ और उसीके अन्याय अत्याचारों से तुरुष्क वंश के राज्य की जड़ें खोखली हो गयीं। मुनियो! मेरा उद्देश्य इन अन्यायी अधर्मी राजाओं का चरित्र सुनाने का नहीं है इसलिये मैं इन बातों को कहना नहीं चाहता ये तो ग्राम्य कथायें हैं।

तीसरे तुरुष्क जहाँगीर के समय से ही विदेशी व्यापारी समुद्र मार्ग से भारत में आने लगे। इससे पूर्व भारतवर्ष ही एक सभ्यता सदाचार और धर्म का मूल स्थान माना जाता था। यहाँ से जो लोग चले जाते थे वे ही विदेशों में अपना अधिकार जमा लेते। यहाँ से दो प्रकार के लोग जाते थे। एक तो आर्य व्यापारी और दूसरे उनके साथ अनार्य सेवक, जो नौका चलाने और अन्य सेवा सम्बन्धी कार्य करते थे। विदेशों में जाकर बस जाते और वहाँ की जलवायु के कारण उनके अंग गौर वर्ण के हो जाते।

धर्माचार्यों ब्राह्मणों के ससर्ग से पृथक् होने के कारण उनके आचरण म्लेच्छों के से हो जाते और वे सदाचार से हीन हो जाते। भारत से उनका व्यापार सम्बन्ध तो होता किन्तु प्रत्यक्ष नहीं परम्परागत होता। वे लोग भारत को भूल ही गये थे। भारत धर्म

। सदाचार मे समृद्धि मे सर्वश्रेष्ठ था, अतः इन असभ्य या र्ध सभ्य देशों की ओर ध्यान ही नहीं देता था। ये लोग किसी कार जलमार्ग से यहाँ व्यापार करने आ गये। व्यापारियो को ारतीय लोग अपनी प्रजा मे श्रेष्ठ मानते थे। इसीलिये व्यापारी रय श्रेष्ठ या सेठ कहे जाते हैं।

आर्य राजाओं का यह मुख्य धर्म है, कि वह अपने राज्य में

व्यापार करने वाले व्यापारियों की सब भाँति रक्षा करे। जिसके राज्य में व्यापारी सुरक्षित नहीं होते वह दस्यु राज्य समझा जाता इस परम्परा को तुरुष्कों ने भी पालन किया। ये गुरुंड लोग प्रथम यहाँ व्यापार करने ही आये थे। किसी को स्वप्न में भी इस बातका अनुमान नहीं था कि व्यापारी भी कभी राजा बन सकता है। इस लिये तुरुष्कों ने इन श्वेत गुरुण्डों को व्यापार करने की आज्ञा दे दी। इन्होंने छलबल से अनेक युक्तियों और बुरे कौशलों से परस्पर में फूट डालकर अपनी शक्ति बढ़ा ली और पीछे ये व्यापारी से राजा बन गये। मुनियो ! विधि की ऐसी विडम्बना है।

तीसरे तुरुष्क राजा जहाँगीर के समय में ये आये और उनकी उदारता से इन्होंने सैन्य बल बढ़ा लिया फिरङ्गी लोग प्रथम तो अपने को भारतीय सम्राटों के प्रजा कहते थे।

चौदहवें तुरुष्क राजा शाहजहाँ (दूसरे) के समय में तो ये पूर्णरूप से राजा ही बन गये। नाममात्र को तीन तुरुष्क राजा और भी हुए किन्तु वे गुरुण्डों के बन्दी या वेतनभोगी दास थे। सम्पूर्ण देश में इन गुरुण्डा का ही आधिपत्य हो गया लगभग दो सौ वर्ष इन गुरुण्डों का आधिपत्य इस देश में रहा। पाँच तो अप्रत्यक्ष और पाँच प्रत्यक्ष, इस प्रकार ये दश गुरुण्ड राजा हुए।

ये गुरुण्ड इतने असंस्कृत छली और विश्वास घाती थे कि इन्होंने भारतीयों को धर्म सदाचार से हीन बना दिया। मुनियो जितना अधर्म असदाचार विश्वासघात इन डेढ़ सौ दो सौ व में इन विदेशी श्वेत गुरुण्डों ने फैलाया उतना बलपूर्वक अत्य चार करके यवन तुरुष्क कोई भी न फैला सके। इन्होंने प्राच भारतीयता का विनाश करके लोगों के मस्तिष्क में छल प्र भर दिया। इन लोगों ने अधर्म को ही धर्म माना, दुराचार ही सदाचार सिद्ध किया और भोग को ही जीवन का चरम ल

कहा। इस समय मे भौतिक वस्तुओं का भोग सामग्रियों का आसुरी शक्ति का विकाश अवश्य हुआ किन्तु ये सब आविष्कार सदाचार धर्म के लिय विनाश ही सिद्ध हुए। ये गुरुण्ड लोग भारत को छोड़कर चले तो अवश्य गये, किन्तु अपनी कुप्रवृत्तियों और कुशिक्षा को यहाँ छोड गये जिसका परिणाम भारतीयों को कई पीढियो तक भोगना पड़ेगा।"

शौनकजी ने कहा—'सूतजी! आपने ये कथाये बहुत ही सक्षेप में कही। अच्छा ही किया इन अधर्मियों की कथा सुनने मे हमें रुचि भी नहीं अब यह बताइये गुरुण्डों के पश्चात् किनका राज्य होगा ?"

इस पर सूत जी ने कहा—'सुनियो! यह विषय ऐसा है कि इस विषय को आप न पूछें तो ही अच्छा है।"

शौनक जी ने पूछा—"क्यों सूतजी जब आपने गुरुण्डों तक बताया तो आगे भी बताइये।"

सूतजी ने कहा—"महाभाग! मैं बताऊँगा तो अवश्य, किन्तु इसे बहुत ही सक्षेप मे केवल निर्देशमात्र ही करूँगा और इसका कारण भी बताऊँगा। आप सब सावधान होकर इसे सुनें।"

छप्पय

ये दश भये गुरुण्ड फिरङ्गी नृप व्योपारी।
छल कर कीयो राज सबनि की बुद्धि बिगारी॥
होवें ग्यारह मौन चार किलि क नृप सुनि।
तेरह बाह्लिक होहिँ छात्र द्वै आभ्र सात पुनि॥
मगध पुरञ्जय क्रूर नृप, यदु पुलिन्द अरु भद्र में।
क्षत्रिय, द्विज अरु वैश्यकूँ, सबनि मिलावें शूद्र में॥

कलियुग के अन्यान्य नृपतिगण

(१३४४)

तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छ प्रायाश्चभूभृतः।
एतेऽधर्मानृत पराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः॥
स्त्री बाल गो द्विजघ्नाश्च परदारधनाहृताः।
उदितास्तमित प्राया अल्प सत्त्वाल्पकायुषः॥*

(श्री भा० १२ स्क० १ अ० ४०, ४१श्लो०)

छप्पय

फिरि सुराष्ट्र आभीर शूर अर्बुद के द्विजगन।
म्लेच्छ सरिस बनि जायँ मात्य ह्वै जावें सब जन॥
म्लेच्छ मात्य अरु शूद सिन्धु कश्मीर पंचनद।
इनि देशनि बनि नृपति देहिं म्लेच्छनिकूँ सब पद॥
खण्ड खण्ड बनि देश के, पृथक नृपति बनि जायँगे।
द्विज-द्रोही लोभी परम, प्रजनि क्लेश पहुँचायँगे॥

संसार के प्राणी अँधेरे में भटक रहे हैं। कल क्या होगा इसका पूर्ण ज्ञान किसी को नहीं है। शास्त्रकारों ने तो यहाँ तक कहा है कि पुरुष के भाग्य को दैव भी नहीं जानता। भविष्य की

---

*श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! ये जितने भी कलियुगी राजे गिनाये हैं यह नहीं कि क्रम से एक के पश्चात् एक हों। जो बताये हैं ये एक काल में ही होंगे। ये अधर्म और असत्य में तत्पर रहेंगे। अल्प दानी और अत्यन्त क्रोधी होंगे। ये लोग स्त्री, बालक गौ और द्विजों की हत्या करने वाले परधन परनारी के लोलुप क्षण क्षण में रुष्ट और तुष्ट तथा अल्प वीर्य और अल्पायु होंगे।'

घटनायें काल के गर्भ में छिपी रहती हैं। यह मनुष्य प्राणी अपने को सब से अधिक बुद्धिमान और चतुर लगाता है। सैकड़ों सहस्रों वर्षों से बैठे बैठे विज्ञान बनाता रहता है, इसे भी इस बात का यथार्थ ज्ञान नहीं कि अगले क्षण में क्या होगा। अभी अच्छे भले भोजन करके काम से जा रहे हैं। सायकाल को यह करेंगे, कल वहाँ जायेंगे, फिर वह करेंगे ऐसी अनेकों बातें सोचते जाते हैं, सहसा पैर फिसल गया हड्डी टूट गयी। सब विधान धरे के धरे ही रह गये। चारपायी पर पड़ गये। आज कोट्याधीश हैं अपने बराबर किसी को समझते नहीं। रात्रि में दस्युओं ने आक्रमण किया सर्वस्व छीन लिया द्वारद्वार के भिखारी बन गये। यह इतना बड़ा बुद्धिमान प्राणी भविष्य के सम्बन्ध में *कितना पराधीन है, कैसी इसकी दयनीय दशा है कैसी इसकी* विवशता है। यदि सभी को अपने भविष्य की बातें मालूम होतीं तो लोग दुखी क्यों होते। भगवान् ने इन प्राणियों को इतना अपंग क्यों बनाया ?

एक प्रकार से अच्छा भी है हम भूत को भूल जाते हैं भविष्य के विषय में अनभिज्ञ रहते हैं इसीलिये कार्यों में व्यस्त रहते हैं, पुरुषार्थ करते हैं। यदि सब को भविष्य की बातों का ज्ञान हो जाय, तो मनुष्य चिन्ता और दुख के ही कारण मर जाय, जिसे प्राण दण्ड की राजा की ओर से आज्ञा हो जाती है और उसे विश्वास हो जाता है, कि आज से इतने दिन पश्चात् मेरे प्राण ले लिये जायगे, तो उसकी कैसी दशा हो जाती है। उसकी वह दशा मृत्यु से भी अधिक भयावह है। वह एक मात्र इसी आशा पर कष्ट से जीता रहता है कि सम्भव है राजा दया करके मुझे प्राण दान दे दे। इन सब बातों से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं, कि भगवान् ने जो भी किया उचित ही किया। सर्व साधारण

भविष्य के विषय में अन्धकार में ही बने रहें तभी उनका कल्याण है। तभी वे जीवनयात्रा में अग्रसर हो सकते हैं।

सर्वज्ञ ऋषि मुनि त्रिकालदर्शी होते हैं। वे भूत भविष्य और वर्तमान सभी समय की बातें जानते हैं। ज्योतिष आदि से भी भविष्य की बातें जानी जाती हैं, किन्तु वे सर्वांश पूर्ण सत्य ही निकलें इसकी कोई प्रतीक्षा नहीं। कभी कभी वे बातें असत्य भी निकल जाती हैं। इसीलिये त्रिकालदर्शी ऋषि मुनि भविष्य की बातों को स्पष्ट नहीं बताते संकेत से बताते हैं। जैसे वशिष्ठ जी तो त्रिकालज्ञ थे। वे सब जानते थे। श्री रामजी राजा न होंगे, वे वन को जायँगे। किन्तु जब राजा ने उनसे आग्रह किया कि कि 'उन्हें राजा बना दो शुभ मुहूर्त बता दो, तो वशिष्ठ जी ने कहा—श्री रामचन्द्र जी जब भी राजा हो जायँ तब ही शुभ मुहूर्त है। आप अमुक दिन राज तिलक का निश्चय करें। दैव पूरा कर दें तो अच्छा ही है।" इसलिये भविष्य के विषय में बहुत उत्सुकता न करनी चाहिये। जो होने वाला होगा, वह होकर ही रहेगा उसे कोई टाल नहीं सकता। न होने वाला होगा वह कभी हो ही नहीं सकता मंगल के ही लिये करेंगे। शिव की कोई भी चेष्टा अशिव हो ही नहीं सकती। जो हो गया सो तो हो ही गया। उसके विषय में सोचना व्यर्थ है। जो होने वाला है वह होकर ही रहेगा उसे कोई भी टाल नहीं सकता। अतः भूत भविष्य का विचार छोड़कर वर्तमान पर ही दृष्टि रखनी चाहिये। जिसका वर्तमान बन गया उसका भूत भविष्य कभी बिगड़ ही नहीं सकता।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! मेरे गुरुदेव भगवान् शुक ने जो महाराज परीक्षित को उनके पुत्र के पश्चात् के जितने राजाओं का वृत्तान्त सुनाया, उस समय गुरुंडों तक वे सब भविष्य के गर्भ में छिपे हुए थे अंब में जो जन लोक में आप सब को यह कथा सुना रहा हूँ, इस समय तक गुरुंडों तक ये सब राजा हो चुके और भूत

के गर्भ में जाकर पुनः छिप गये। गुरुण्डों से आगे जो मौन आदि राजा होंगे, वे अब भविष्य के गर्भ में छिपे हैं। गुरुण्डों के पश्चात् अब इस धरा धाम पर मौनो का अधिपत्य होगा।"

शौनकजी ने पूछा—"सूत जी! मौनों से आपका तात्पर्य किनसे है?"

सूतजी बोले—"महाराज! मौन शब्द के तीन अर्थ हैं, मुनियों के गोत्र वाले वर्णाश्रम धर्मी, मौन व्रत को धारण करने वाले और मुनि (बुद्धभगवान्) को अपना आचार्य मानने वाले। अर्थात् अब भारतवासी और चीन जापान जैसे बौद्धधर्मावलम्बी पुरुषों का ही पृथिवी पर आधिपत्य रहेगा। अब तक जो गुरुण्ड ही अपने को सम्पूर्ण भूमि का अधिपति माने बैठे थे वैसा न होगा अब उनकी सीमा अपने अपने देशों में ही रहेगी। ऐशियायी जातियाँ ही बल शालिनी बनेंगी। गुरुण्डों ने आकर भारतियों की धर्मभावना को बड़ी हानि पहुँचायी। इन्होंने भोगवाद का ही प्रचार किया। नाना भाँति के वाष्पयानों से दुर्गुणों का ही प्रचार किया। मौनों के शासन में पुनः धर्म का प्रसार होगा। लोग अधार्मिक प्रवृत्तियों से ऊब कर फिर एक बार बड़ी भावुकता से भगवान् को मानने पूजने लगेंगे। अब से तीन सौ वर्षों तक मौनों का साम्राज्य रहेगा। ये ग्यारह नृपतिगण तीन सौ वर्षों तक शासन करेंगे।

फिर किलकिला नगरी में एक भूतनन्द नामक राजा होगा। वह मौनों से अधिकार छीनकर स्वयं राजा बन जायगा। फिर वङ्गिरी, वङ्गिरी का भाई शिशुनन्दि तथा यशोनन्द और प्रवीरक ये राजा होंगे। ये सब एक सौ छै वर्ष तक राज्य करेंगे। इनके तेरह पुत्र होंगे जो बाह्लिक नाम से विख्यात होंगे। ये सब के सब राजा संकरवर्ण के होंगे किन्तु अपने को क्षत्रिय ही कहेंगे। इनके पश्चात् क्षत्रिय वंश का राजा पुष्पमित्र होगा। उसका पुत्र दुर्मित्र

होगा। इसके पश्चात् कोई शक्तिशाली राजा न रहेगा। देश के खण्ड खण्ड हो जायँगे। वाल्हीक वंशीय तेरह राजाओं के पुत्र कुछ भूमि के अधिपति हो जायँगे। आन्ध्र देश के सात राजा, और काशल देश के सात राजा होंगे। विदूर देश निषध देशों के राजा भी कई होंगे। फिर कोई सार्वभौम प्रतापी राजा न रहेगा, जिसकी बात सभी मानें और सभी राजा गण जिसकी मैत्री के लिये उत्सुक रहें।

मगध देश में एक विश्वस्फूर्जि नाम का राजा होगा। वह अपने को पुरञ्जय के नाम से प्रसिद्ध करेगा। यह पुरञ्जय पर्वोक्त पुरञ्जय से पृथक होगा। पिछले क्षत्रिय और दूसरे राजा वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले होंगे, किन्तु यह पुरञ्जय बड़ा दुष्ट अधार्मिक होगा। यह वृषल व्रात्य जिन जिन देशों को जीतेगा—जैसे पुलिन्द, यदु, तथा मद्रादि देशों को—उनमें जितने ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य होंगे उन सब को बलपूर्वक एक कर देगा। जाति और वर्णों को तोड़ कर सब को आचारभ्रष्ट करके म्लेच्छों के समान बना देगा। सभी का सब के साथ विवाह कराने लगेगा। सभी को बलपूर्वक एक पंक्ति में बिठा कर खिलावेगा।

यह पुरञ्जय कुछ प्रभावशाली होगा। यह मगध से आकर पद्मावती पुरी में अपनी राजधानी बनावेगा। गंगा यमुना के मध्य के पवित्र देश पर इसका आधिपत्य हो जायगा, जो कि वर्णाश्रम धर्म का हृदय और आदि स्रोत है। यह दुर्बुद्धि राजा वर्णाश्रम धर्म को पूर्ण रीत्या तो न मेंट सकेगा, किन्तु अधिकांश ब्राह्मणों को शूद्र प्रायः बना लेगा। क्षत्रियों से अधिकार छीन लेगा। क्षत्रियों को शासन से निकाल बाहर करेगा। सब को वृषल सदृश बना लेगा और हरिद्वार से तीर्थराज प्रयाग के परम पवित्र भूमि पर अपना शासन करेगा।

इसके अनन्तर सुराष्ट्र, अवन्ती, आभीर, शूर, अर्बुद और

मालवा आदि देशों के राजा भी शूद्र प्रायः हो जायँगे। इन देशों के ब्राह्मण भी संस्कारहीन धर्म कर्म से रहित शूद्रों के समान ही बन जायँगे। सिन्धु देश, चन्द्रभागा के पञ्चनद आदि देश, कौन्ती पुरी कश्मीर मण्डल इन सब में होंगे तो आर्य ही राजा किन्तु वे आर्य राजा संस्कारहीन होंगे। ब्राह्मण भी होंगे तो ब्रह्म तेज से हीन ही होंगे। आचार विचार से रहित होंगे। बहुत से म्लेच्छ भी आर्यों का सा वेष बना कर राजा बन जायँगे।

फिर कोई एक प्रभावशाली उच्च कुलीन वंशीय राजा नहीं रहेगा। सभी म्लेच्छों के समान हो जायँगे। कुलीनता का प्रश्न ही मिट जायगा। जिसके पास शक्ति होगी वही राजा बन बैठेगा। एक ही समय में बहुत से राजा हो जायँगे। ये आपस में लड़ते रहेंगे। धर्म से हीन होने के कारण सभी निस्तेज होंगे उनके यहाँ सत्यासत्य का विचार ही न रहेगा। बात बात पर झूठ बोलेंगे। जो जितना ही छल प्रपञ्च करके झूठ बोल कर अपना स्वार्थ सिद्ध करेगा वह उतना ही अधिक बुद्धिमान माना जायगा। वैसे तो ये दान धर्म से दूर ही रहेंगे, यदि किसी का दान भी देंगे तो अति अल्प मात्रा में। एक पैसा दे दिया तो समझेंगे हमने बहुत बड़ा दान कर दिया। ये क्षण क्षण में रुष्ट होने वाले क्षण क्षण में तुष्ट होने वाले नाम मात्र के राजा बड़े ही चञ्चल चित्तवाले होंगे। ये अल्प वीर्य होंगे। इनकी आयु भी अल्प ही रहेगी। कोई दश दिन राजा रहा तो कोई बीस दिन। इनके कोई संस्कार भी न होंगे। सब संस्कारों से शून्य तथा धार्मिक क्रिया कलाप से रहित होंगे। क्रोध की तो साक्षात् मूर्ति ही होंगे। स्त्रियाँ, बालक, गौ और ब्राह्मण सदा से अवध्य माने जाते हैं। ये कलियुगी राजागण इन सब को बात की बात में मरवा डालेंगे। दूसरे की जहाँ कोई सुन्दरी स्त्री देखी कि तुरन्त उसे छीन लेंगे। दूसरों के धन को बल पूर्वक छीन लेंगे। ये केवल नाम मात्र के राजा होंगे, किन्तु वास्तव

में इन्हें राजा न कह कर म्लेच्छदस्यु ही कहना चाहिये। प्रजा में जिसे भी धनी देखेंगे उसका दिन दहाड़े धन लूट लेंगे। इनके कर्मचारी भी वैसे ही होंगे। प्रजा के लोग भी परस्पर में लड़ते भिड़ते रहेंगे। सर्वत्र अराजकता फैली रहेगी। कोई अच्छा राजा हो गया तो फिर बुरा हो गया। प्रायः अधिकांश में बुरे ही राजा होंगे। प्रजा के लोग सदा अशान्त बने रहेंगे। लड़ते लड़ते सब का अन्त हो जायगा। घोर कलियुग आ जायगा जब कलियुग का अन्त होने को होगा तो कल्कि भगवान् का अवतार होगा।

शौनकजी ने कहा—"सूत जी! यह तो आपने बहुत ही संक्षेप में भविष्य के राजाओं का वृत्तान्त बताया।

सूत जी ने कहा—"महाराज! इन अधार्मिक राजाओं का तो मैंने प्रसंग लगाने को वर्णन कर दिया है। इनका तो चरित्र अन्याय करना अधर्म का आश्रय लेकर विषय भोगों को भोगना यही है। इसलिये मैंने जितना भी कहा है बहुत कहा है। गुरुण्ड राजा इस देश को छोड़ कर चले गये, अब मौनों की प्रबलता पृथिवी पर होगी।"

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! इस भारतवर्ष में यह बहुत बड़ी बात हो गयी, गुरुण्ड इस देश को छोड़ कर चले गये। विदेशियों का शासन हट कर स्वदेशी लोगों का हो गया। परतन्त्र से देश स्वतन्त्र हो गया, किन्तु इतनी भारी घटना का वर्णन आप की पुराणों में कहीं नहीं है।"

सूत जी ने कहा—"है क्यों नहीं महाराज! सभी जानते हैं गुरुण्ड गोरे रंग के शीत प्रधान देश में रहने वाले विदेशी हैं। मौनी मुनियों को मानने वाले स्वदेशी हैं। यह तो प्रत्यक्ष ही सिद्ध है कि विदेशी गुरुण्ड जब चले जायँगे, तो स्वदेशी मौनों का राज्य होगा। इतना सब होने पर भी महाराज! पुराण कर्ताओं की दृष्टि में स्वदेशी विदेशी का भेद कभी नहीं रहा। उनकी दृष्टि

तो सदा धर्म पर रही है। जो धर्मात्मा हैं भगवान् के भक्त हैं उनके गुणों का गान करना। जो आततायी है, अधर्मी हैं, अत्याचारी हैं उनकी उपेक्षा करना। फिर चाहें वे देशी हों विदेशी हों। जहा के लोग वसुधेव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त को मानने वाले हों, उनके लिये सब स्वदेशी हैं। स्वदेशी विदेशी का भेदभाव तो इन दस्यु-धर्मी समुद्रपार के लोगों ने किया है, कि अपने देश का आदमी कितना भी अन्यायी अत्याचारी हो उसका पक्ष करना, दूसरे देश का कितना भी सदाचारी धार्मिक सहिष्णु और सज्जन हो उसकी उसकी अपेक्षा तिरस्कार करना। भारत की दृष्टि सदा धार्मिक रही है। विदेशियों और विधर्मियों से सम्बन्ध इसीलिये नहीं रखा जाता था कि वे संस्कारहीन हैं। यदि वे आकर इस देश में बस जाते थे। दो चार पीढी रह कर अपने आचरणों की शुद्धता का प्रमाण देते थे तो स्वदेशी विदेशी का भेदभाव छोड कर वह समाज मे मिला लिया जाते थे। ये विदेश से जितने हूण, शक, मिस्र देश तथा अन्यान्य देशों के लोग आये और शनैः शनैः इस समाज के अङ्ग बन गये। इन विधर्मी गुरुण्डों ने समाज को विकृत कर डाला, यहाँ की संस्कृति पर इनके कारण बडा आघात पहुँचा। यद्यपि ये बाह्य रूप से तो चले गये, किंतु इनका प्रभाव तो अब भी शेष ही है। यहाँ के लोगों को अपना ही सा बना गये। अब शनैः शनैः ये भाव जायँगे। प्रकृति स्वयं ही जब जैसी वस्तु की आवश्यकता अनुभव करती है तब तैसी ही वस्तु बना लेती है।

शौनक जी ने कहा—"अच्छा, सूत जी! एक शंका हम को और रह गयी। कलियुग का समय आपने मनुष्यों के वर्षों से चार लाख बत्तीस सहस्र वर्ष बताया। अब तक पाँच सहस्र कुछ अधिक वर्ष कलियुग के बीते हैं। सो पाँच सहस्र वर्ष के

कलिकाल की कुछ कलुषित करतूतें

(१३४५)

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन् नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० २ अ० १ श्लो०)

छप्पय

कलिमें धन ही मुख्य धनी ही पंडित मानी ।
बली करै सो न्याय शूररति सोई ज्ञानी ॥
जातें मन मिलि जाय वही नारी अति प्यारी ।
वेष शेष रहि जाय छली सब आश्रमधारी ॥
रँगे वस्त्र स्वामी बने, पंडित जे बक बक करैं ।
संसकार तें रहित सब, वेष विविध खलजन धरैं ॥

जैसा समय होता है, वैसी ही सब की बुद्धि बन जाती है। अधर्म कोई किसी को सिखाने नहीं जाता समय आने पर आप से आप लोगों की वैसी ही मति हो जाती है। जाड़ा आने प

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! तदनन्तर काल के प्रब प्रवाह से दिनों दिन धर्म, सत्य, शौच, दया, आयु, बल तथा स्मृ आदि सद्गुण कलियुग में क्षय होने लगेंगे।"

कोई घर घर कहने नहीं जाता कि अब जाडे के कपडे निकाल लो लोग स्वयं ही मोटे मोटे ऊनी सूनी पहिनने लगते हैं। जिन वस्त्रों को गरमी के दिनों मे पहिनना तो पृथक् रहा, छूने मे भी भय लगता था। उन्हीं वस्त्रा का शीत आते ही बडी रुचि से पहिनते हैं। इसी प्रकार सत्ययुग त्रेता आदि धर्म प्रधान युगों मे जिन कर्मों को करना तो पृथक रहा सुनना भी पाप समझा जाता था उन्हीं कर्मों को कलिकाल के आने पर लोग बडी रुचि के साथ अभिमान पूर्वक करते हैं और उन्हे करके गर्व का अनुभव करते हैं। इस विषय मे दोष किसे दिया जाय यह तो युग धर्म है होकर ही रहेगा। इस काल चक्र की चलती चक्की में जो पडेगा वह पिसेगा। कोई विरला ही कील का—मूल पुरुष का—आश्रय लेकर बच सकता है नहीं तो युग का प्रभाव तो सब पर पडता ही है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कलियुग के सम्बन्ध में कुछ भी कहने की मेरी रुचि नहीं है। फिर भी आपने प्रश्न किया है, तो मुझे कहना ही पड़ेगा। दूसरे बिना दोष गुणों का परिचय हुए हम दोषों को छोड़कर गुणों को कैसे अपना सकते हैं, इसीलिये अत्यन्त संक्षेप में मैं कलियुग की कुछ करतूतों का परिचय कराता हूँ।

कलियुग मे लोगों की धर्म से स्वाभाविक अरुचि हो जायगी। धर्म को क्षयिष्णु होने का शाप ही हो चुका है। अतः सत्ययुग से ही उसका क्षय होना आरम्भ हो जाता है। धर्म को चतुष्पाद वृषभ की उपमा दी जाती है। तप, शौच दया और दान ये उसके चार पैर बताये जाते हैं। सत्ययुग मे धर्म के पूरे चार पैर थे। त्रेता मे आकर उसका एक पैर टूट गया। अर्थात् लोगों की रुचि तपस्या मे नहीं रही। द्वापर में आकर दो पैर टूट गये।

अर्थात् लोग तपस्या भीतरी बाहरी पवित्रता के विषय में उदासीन हो गये। कलियुग में आकर तीन पैर टूट गये। अर्थात् तप, शौच, दया ये लोगों में नहीं रही। धर्म केवल मात्र दान या सत्य के सहारे कलियुग में खड़ा है। क्रमशः उसका यह पैर भी कलियुग के अन्त में टूट जायगा। इससे धर्म पैर हीन पंगु बन जायगा। भगवान् फिर पैर जोड़ देंगे। फिर सत्ययुग आरम्भ हो जायगा। धर्म का जितना ही क्षय होता जायगा उतना ही कलियुग बढ़ता जायगा। कलियुग के भाई अधर्म का उतना ही प्रचार होता जायगा।

कलियुग में सत्ययुग न रहेगा। लोग बात बात पर असत्य भाषण करेंगे। न छिपाने योग्य बातों को भी छिपावेंगे। व्यर्थ में बिना प्रयोजन के असत्य बोलेंगे। लोगों को असत्य भाषण में आनन्द आवेगा।

लोगों में पवित्रता न रहेगी। भीतर के सद्गुण तो नष्ट हो ही जायँगे। बाहरी पवित्रता भी चली जायगी। शौच के अनन्तर लोग मृत्तिका का व्यवहार न करेंगे। छूआ छूत का भेदभाव न रहेगा। मलमूत्र को फेंक कर भी लोग हाथ न धोवेंगे। मलमूत्र फेंकने वालों के साथ बैठकर खाने में बड़ा गर्व समझेंगे। सभी सबके हाथ का बनाया भोजन करने लगेंगे। भोजन सामग्री बनी हुई हाटों में बिकने लगेगी। लोग एक दूसरे का जूठा खाने में संकोच न करेंगे। एक ही पात्र में सभी जल पी लेंगे। दाल रोटी बेचने वाले सभी को एक पात्र में देंगे। जो जूठा अन्न बच जायगा उसे भी दूसरों को परोस देंगे। वस्त्रों की ऊपरी स्वच्छता कुछ कर लेंगे भीतर मलिन वसन पहिने रहेंगे। दाँतों पर मैल ज[illegible] रहेगा। स्त्रियाँ मासिक धर्म होने पर भी सब को छू लेंगी। स[illegible] के साथ बैठकर खालेंगी उसका कोई विचार ही न रहेगा। उ[illegible]

चलों से सब काम करेंगी। सारांश शौच सम्बन्धी जितने शास्त्रीय आचार विचार हैं उनका कोई पालन न करेगा। सब मन-मानी करेंगे।

लोग बडे असहिष्णु होंगे। सदा क्रोध में भरे रहेंगे। अपने स्वजन अपकारी को भी कभी क्षमा न करेंगे। बदला लेने की भावना सदा बनी रहेगी। यहाँ तक कि शिष्य गुरु को पुत्र पिता को तथा अपने पूज्य श्रेष्ठ सम्बन्धियों को भी लोग क्षमा न करेंगे उनको भी दण्ड देने का प्रयत्न करेंगे।

दया तो लोगों के हृदय से उठ ही जायगी। अपना पडोसी कितना भी दुखी हो उसके ऊपर दया न दिखावेंगे। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये सब कुछ अन्याय अत्याचार करेंगे। निर्दय होकर पशुओं का संहार करेंगे जिससे अपने स्वार्थ में तनिक भी व्याघात समझेंगे उसी की हत्या कर देंगे। कलियुगी लोग सदा एक दूसरे से जलते रहेंगे।

इसीलिये अति शीघ्र ही वृद्ध हो जायँगे। राजक्षमा आदि राज रोगों का सर्वत्र प्रसार होगा। अन्यान्य युगों मे किसी महा पाप से किसी विरले को ही ये रोग होते थे अब कलियुग में ऐसे रोग घर घर होंगे। इसीलिये कलियुगी लोग अल्पायु होंगे।

कलियुग मे सभी लोग बलहीन होंगे। भीम ने सहस्रों हाथियों को उठाकर आकाश मे फेंक दिया या अर्जुन ने अकेले ही निवात कवचादि असुरों को जीत लिया इन बातो को कलियुगी लोग गप्प समझेंगे। पाप के कारण कलियुग के लोग न तो भोग ही भोग सकेंगे न कोई बलका काम ही कर सकेंगे। यन्त्रों से काम लेंगे। न उनमें शारीरिक ब(ही रहेगा और न आध्यात्मिक बल ही। कीट पतङ्गों की भाँति अपने दिन बितावेंगे। तनिक सी विपत्ति

घाती हो जायँगे, व्यवहार इतना कपट पूर्ण हो जायगा कि पिता पुत्र के साथ पुत्र पिता के साथ, पत्नी पति के साथ, पति पत्नी के साथमित्र मित्र के साथ, सम्बन्धी सम्बन्धी के साथ कहाँ तक कहें सभी सभी के साथ कपट करने लगेंगे। ऋण लेकर उसे न देंगे। न्यायालयों में मिथ्या साक्षी देआवेंगे ली हुई वस्तु के लिये भी नट जायँगे। खाने पीने की वस्तु में मिलावट करने में भी संकोच न करेंगे। सहस्रों मनुष्यों को रोगी बनाकर यदि एक पैसा मिलता है, तो लोग इसमें भी न हिचकेंगे। विशुद्ध आटा, विशुद्ध घृत, विशुद्ध दूध तथा अन्यान्य भी खाद्य सामग्री विशुद्ध न मिल सकेगी। लोग इनमें ऐसी ऐसी अशुद्ध वस्तुएँ मिला देंगे जिनका स्पर्श भी पाप है। व्यवहार की विशुद्धता तो प्रायः विलुप्त हो ही जायगी।

ब्राह्मण नाम मात्र के रह जायँगे। सभी लोग ब्राह्मण बनने को लालायित रहेंगे। जो संकर वर्ण के हैं वे भी अपने को ब्राह्मण कहेंगे। वे ब्राह्मणों के यज्ञ, वेदाध्ययन, तप तथा दान आदि कर्मों को न करेंगे। केवल अपने नामों में शर्मा आदि लगावेंगे। केवल एक सूत्र गले में डाल लेना यही ब्राह्मण पने का चिन्ह रह जायगा। उस सूत्र को भी सविधि न पहिनेंगे। वैसे ही इच्छानुसार क्रय करके कण्ठ में डाल लेंगे, जब इच्छा होगी उसे उतार कर फेंक देंगे।

कुछ आश्रम भी नाम मात्र को रह जायँगे। किन्तु उन आश्रमों के कर्म विलुप्त हो जायँगे केवल ऊपरी चिन्ह शेष रह जायँगे। वृद्धावस्था तक झूठ, कपट व्यभिचार दुराचार किया है। दाढ़ी जटा रखा ली ब्रह्मचारी जी बन गये। कल तक ठगी करते रहे लोगों के साथ कपट करते रहे अर्थ अनर्थ करके प्रपञ्च करते रहे आज रंग कपड़े पहिन लिये स्वामी जी बन गये। चाहें जैसी चाहें जिस जाति की स्त्री रख ली, गृहस्थी बन गये। आश्रमों का

धर्म कहीं कहीं ही दिखायी देगा। एक आश्रम के चिन्हों को छोड़-कर दूसरे आश्रम के चिन्हों को स्वीकार कर लेना ही आश्रम परि-वर्तन हो गया। जब इच्छा हुई रंगे कपड़े छोड़कर फिर स्त्री रख ली इस प्रकार आश्रमों का कोई नियम न रहेगा।

कलियुगी पण्डित विद्वत्ता के कारण पण्डित न कहलायेंगे। जो बहुत बकवाद करे। जो भी मन में आवे अन्ट सट बकता रहे। किसी के सम्मुख संकोच न करे। यही पण्डित की पहिचान होगी। एक ने कहा—"मुझे आपके ऊपर लघु-शङ्का करनी है।" दूसरे ने कहा—"उसे मुँह में क्यों भरे है, बाहर निकाल।" इसी पर सब लोग हँस पड़ेंगे कहेंगे ये बड़े भारी पण्डित हैं।

कलियुग में कैसा भी भोला भाला सीधा सादा व्यक्ति क्यों न हो, यदि उसके पास धन नहीं है तो उसी को सब लोग असाधु कहेंगे। जो बहुत लम्बी चौड़ी बातें बनावे, दस बीस झूठे दलाल अपने साथ रखे, दिनभर बकवाद करे, जादू टोना करे, भभूत वरदान दे, झूठे ही कह दे हमें भगवान् के दर्शन होते हैं हम क्षण में दर्शन करा सकते हैं। जो सामने आवे उसे ही मूँड ले। सब के यहाँ सब कुछ खाले। स्त्री पुरुषों से प्रपञ्च की ही बातें करता रहे। नाना भाँति के दम्भ रचे वही बड़ा भारी सिद्ध सद्गुरु महात्मा माना जायगा।

विवाह संस्कार हीन होने लगेंगे। उनमें वैदिक तान्त्रिक कोई विधि न रहेगी। सौभाग्य के कोई चिन्ह भी स्त्रियों के न रहेंगे। विधवा और सधवा में कोई भेदभाव न रहेगा। सौभाग्य चिन्हों के न होने से कोई पहिचान भी न सकेगा कि यह विधवा है या सधवा है शृङ्गार बालों का ही रहेगा। बालों को भाँति भाँति से टेढ़े मेढ़े सजा लेना यही सौन्दर्य का चिन्ह माना जायगा। हाथ धो लिये स्नान कर लिया मानों बड़ा भारी शृङ्गार हो गया।

घाती हो जायँगे, व्यवहार इतना कपट पूर्ण हो जायगा कि पिता पुत्र के साथ पुत्र पिता के साथ, पत्नी पति के साथ, पति पत्नी के साथमित्र मित्र के साथ, सम्बन्धी सम्बन्धी के साथ कहाँ तक कहें सभी सभी के साथ कपट करने लगेंगे। ऋण लेकर उसे न देंगे। न्यायालयों में मिथ्या साक्षी देआवेंगे ली हुई वस्तु के लिये भी नट जायँगे। खाने पीने की वस्तु में मिलावट करने में भी संकोच न करेंगे। सहस्रों मनुष्यों को रोगी बनाकर यदि एक पैसा मिलता है, तो लोग इसमें भी न हिचकेंगे। विशुद्ध आटा, विशुद्ध घृत, विशुद्ध दूध तथा अन्यान्य भी खाद्य सामग्री विशुद्ध न मिल सकेगी। लोग इनमें ऐसी ऐसी अशुद्ध वस्तुएँ मिला देंगे जिनका स्पर्श भी पाप है। व्यवहार की विशुद्धता तो प्रायः विलुप्त हो ही जायगी।

ब्राह्मण नाम मात्र के रह जायँगे। सभी लोग ब्राह्मण बनने को लालायित रहेंगे। जो संकर वर्ण के हैं वे भी अपने को ब्राह्मण कहेंगे। वे ब्राह्मणों के यज्ञ, वेदाध्ययन, तप तथा दान आदि कर्मों को न करेंगे। केवल अपने नामों में शर्मा आदि लगावेंगे। केवल एक सूत्र गले में डाल लेना यही ब्राह्मण पने का चिन्ह रह जायगा। उस सूत्र को भी सविधि न पहिनेंगे। वैसे ही इच्छानुसार क्रय करके कण्ठ में डाल लेंगे, जब इच्छा होगी उसे उतार कर फेंक देंगे।

कुछ आश्रम भी नाम मात्र को रह जायँगे। किन्तु उन आश्रमों के कर्म विलुप्त हो जायँगे केवल ऊपरी चिन्ह शेष रह जायँगे। वृद्धावस्था तक झूठ, कपट व्यभिचार दुराचार किया है। दाढ़ी जटा रखा ली ब्रह्मचारी जी बन गये। कल तक ठगी करते रहे लोगों के साथ कपट करते रहे अर्थ अनर्थ करके प्रपञ्च करते रहे आज रंग कपड़े पहिन लिये स्वामी जी बन गये। चाहें जैसी चाहें जिस जाति की स्त्री रख ली, गृहस्थी बन गये। आश्रमों का

धर्म कहीं कहीं ही दिखायी देगा। एक आश्रम के चिन्हों को छोड़-कर दूसरे आश्रम के चिन्हों को स्वीकार कर लेना ही आश्रम परिवर्तन हो गया। जब इच्छा हुई रंगे कपड़े छोड़कर फिर स्त्री रख ली इस प्रकार आश्रमों का कोई नियम न रहेगा।

कलियुगी पण्डित विद्वत्ता के कारण पण्डित न कहलायेंगे। जो बहुत बकवाद करे। जो भी मन में आवे अन्ट सन्ट बकता रहे। किसी के सम्मुख संकोच न करे। यही पण्डित की पहिचान होगी। एक ने कहा—"मुझे आपके ऊपर लघु-शंका करनी है।" दूसरे ने कहा—"उसे मुँह में क्यों भरे हैं, बाहर निकाल।" इसी पर सब लोग हँस पड़ेंगे कहेंगे ये बड़े भारी पण्डित हैं।

कलियुग मे कैसा भी भोला भाला सीधा सादा व्यक्ति क्यो न हो, यदि उसके पास धन नहीं है तो उसी को सब लोग असाधु कहेंगे। जो बहुत लम्बी चौड़ी बातें बनावे, दस बीस झूठे दलाल अपने साथ रखे, दिनभर बकवाद करे, जादू टोना करे, भभूत वरदान दे, झूठे ही कह दे हमे भगवान् के दर्शन होते हैं हम क्षण मे दर्शन करा सकते हैं। जो सामने आवे उसे ही मूँड ले। सब के यहाँ सब कुछ खाले। स्त्री पुरुषों से प्रपञ्च की ही बातें करता रहे। नाना भाँति के दम्भ रचे वही बड़ा भारी सिद्ध सद्गुरु महात्मा माना जायगा।

विवाह संस्कार हीन होने लगगे। उनमे वैदिक तान्त्रिक कोई विधि न रहेगी। सौभाग्य के कोई चिन्ह भी स्त्रियों के न रहेंगे। विधवा और सधवा में कोई भेदभाव न रहेगा। सौभाग्य चिन्हों के न होने से कोई पहिचान भी न सकेगा कि यह विधवा है या सधवा है शृङ्गार बालों का ही रहेगा। बालो को भाँति भाँति से टेढ़े मेढ़े सजा लेना यही सौन्दर्य का चिन्ह माना जायगा। हाथ धो लिये स्नान कर लिया मानों बड़ा भारी शृङ्गार हो गया।

स्त्रियों की भाँति पुरुष भी पटिया पारकर माँग निकाल कर केशों को सजावेंगे मूछों को मुड़ाया करेंगे। तीर्थों में लोगों की आस्था न रहेगी। कोई कह दे यहाँ से दूर पर एक बड़ा भारी सुन्दर स्वच्छ सलिल वाला सरोवर है तो लोग उसी को देखने उसी में स्नान करने दौड़ जायँगे तीर्थ भावना न रहेगी।

जो झूठ कपट करके पेट भर ले वही सबसे योग्य और बुद्धिमान माना जायगा। सत्यता का लोगों में अभाव हो जायगा। धृष्टता ही सत्यता का चिन्ह रह जायगा। किसी का वस्त्र है उठाकर पहिन लिया। अब वह बहुत कहता है मेरा है, किन्तु वह निर्भीकधृष्ट वाचाल निःसंकोच होकर कह देता है आँखों के नख कटा लीजिये, अपने आपे में रह कर बातें कीजिये, आपने भाँग तो नहीं पी ली। अब वह क्या करता, अपना मुख लेकर चला जाता है। सब लोग उसकी धृष्टता से प्रभावित होकर उसे ही साँचाधारी समझ लेंगे।

किसी की वृत्ति बँधी न होगी, ब्राह्मण सुरा बेचेंगे सभी वर्ण के लोग व्यापार करने लगेंगे। शूद्र अन्त्यज उपरोहिती कर्म करावेंगे। यह काम अच्छा है यह बुरा है, यह उच्च वर्णके लोगों के करने का है यह नीच वर्ण वालों का है इस प्रकार के समस्त भेद भाव मिट जायँगे। जैसे हो तैसे पेट भर कुटुम्ब का पालन हो, यही एकमात्र लक्ष्य अवशिष्ट रह जायगा।

लोगों में धर्म करने की भावना न रहेगी। जो धर्म करेंगे भी तो यश के लिये करेंगे। इमसे सब हमें जान जायँ। राज्य शासन में हमारी पूछ हो। यह धर्म का काम विधि सहित हो रहा है या विधि हीन हो रहा है इस ओर कोई ध्यान ही न देंगे। धर्म के नाम से धन एकत्रित करेंगे अपनी प्रसिद्धि के काम में जिनसे अपनी प्रशंसा होने की आशा होगी उन्हीं को धन देंगे। योग्य व्यक्ति रह जायँगे, अयोग्य व्यक्ति पा जायँगे धर्म के नाम पर

बडे बडे व्यापार होने लगेंगे जो सबसे बडे धर्मध्वजी कहलावेंगे सबसे अधिक अनर्थ करेंगे।

राजा और शासक परम्परागत न हुआ करेंगे किसी वर्ण किसी भी आश्रम का क्यों न हो जा भी धूर्तता से अधिक निपुण होगा, वही शासन की बागडोर अपने हाथों मे ले लेगा। यह तो लोगों के मनसे भावना ही उठ जायगी कि यह ब्राह्मण है वैश्य है क्षत्रिय अथवा शूद्र है। वर्णों का केवल नाम ही नाम शेष रह जायगा। जो शक्तिशाली होगा वही शासक बन जायगा।

शौनकजी बोले—"सूतजी! फिर क्या होगा।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज! और होना हा क्या है अनर्थ ही होगा। जो कुछ ये दस्युधर्मा शासक करेंगे उसका कुछ वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

जो भर लेवै पेट वही समरथ कहलावै।
धरम करे यश हेतु विज्ञ जो बात बनावै॥
वर्णाश्रम कछु रहें न मानें सकल समाजा।
जो होवै अति बली वही बनि जावै राजा॥
लोभी लम्पट क्रूर मति, धन दारा सब हरिहैं।
सबहिँ दुखित ह्वै भागिकें, वास बननि महँ करिहैं॥

—::::—

कलियुग की प्रवलता के चिन्ह

(१३४६)

क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्तेच चिन्तया।
त्रिंशद् विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥*
(श्री भा० १२ स्क० २ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

कन्द, मूल, मधु, मांस खाइ निरबाह करिंगे।
अनावृष्टि दुष्काल आदि तैं बहुत मरिंगे॥
आधि व्याधि बहु होहिँ चलै अति करकश वायू।
बरष बीस या तीस होहि कलियुग में परमायू॥
धरम वरन आश्रम मिटें, दुरगुन अति बढ़ि जायँगे।
सब सद् गुन तें रहित नर, पशुवत समय बितायँगे॥

उन्नति अवनति का मूल कारण भावना है। जिसकी भाव
नायें शुद्ध हैं, वह उन्नत है, जिसकी भावनायें अशुद्ध हैं, वह अ
नत है। इसीलिये भगवान् ने कहा है, सात्विक भावनाओं

*श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! क्षुधा, तृष्णा तथा ना
भाँति की व्याधियों और चिन्ताओं से सन्तप्त रहने के कारण कलियुग
मनुष्यों की पूर्ण आयु बीस या तीस ही वर्षकी रह जायगी।"

बढ़ जाना ही स्वर्ग है और तमोगुण की अभिवृद्धि ही नरक है। जिसकी भावना विशाल है वह सत्ययुगी है, जिसकी भावना क्षुद्र तथा सीमित हैं, वही कलियुगी है। विशाल भाव वाला सब का आदर करेगा विशेष कर अपने से बड़ों की विशुद्ध भाव से सेवा करेगा। उसके प्रति स्वाभाविक स्नेह हो जाने से बड़े लोगों की भावना उसके प्रति उच्च होंगी मन ही मन वे उस सत्व प्रधान सतयुगी व्यक्ति की मङ्गल कामना करेंगे। इससे उसकी आयु बढ़ेगी, विद्या बढ़ेगी और यश बढेगा। इसीलिये सत्ययुगी लोग दीर्घायु, विद्वान् और यशस्वी होते थे। कलियुग में तमोगुण के प्राबल्य से सब क्षुद्र विचार और संकुचित भावना के हो जायँगे, इसीलिये वे सब के सब अल्पायु, विद्याहीन तथा यश कीर्ति से हीन होंगे।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! कलियुग की कलुषित करतूतों को कहाँ तक कहूँ, आप यों ही समझ लें कि ज्यों ज्यों कलियुग बढ़ता जायगा, त्यों त्यों अवगुण भी बढ़ते ही जायँगे। बीच बीच में कुछ संत महात्मा उत्पन्न होकर सत्वगुण की अभिवृद्धि करेंगे, किन्तु कुछ काल में फिर वही दशा हो जायगी। जैसे चिरकाल के रोगी को कोई सुचतुर चिकित्सक चन्द्रोदय, मकरध्वज या अन्यान्य ओषधि देकर कुछ काल के लिये चैतन्य कर लेते हैं किन्तु जहाँ ओषधि का प्रभाव घटा कि फिर ज्यों का त्यों हो जाता है।

कलियुग की आयु ज्यों ज्यों बढती जायगी, त्यों त्यों वह वृद्ध और जर्जरित होता जायगा। समस्त भूमण्डल दुष्ट जनों से व्याप्त हो जायगा। धर्म के चिन्ह जो वर्णाश्रम धर्म हैं, वे लुप्त प्रायः हो जायँगे। शासकों का कोई वंश परम्परागत पृथक वर्ग न रह जायगा। प्रजा के लोगों में से जो भी अधिक छली, कपटी तथा बलशाली होगा वही राजा बन जायगा। जिसके हाथ में शासन की बागडोर आ जायगी, वह चाहेगा सभी संसारी सुख मैं शीघ्रता से एक साथ ही भोग लूँ। वे दुष्ट शासक निर्दयी, क्रूर, लोभी

तथा लुटेरों के समान होंगे। जिस पर भी धन देखेंगे उसी पर भाँति भाँति के कर लगा देंगे। प्रजा के किसी भी मनुष्य पर वे धन न छोड़ेंगे। जिसकी भी युवती सुन्दरी स्त्री देखेंगे उसी को बल पूर्वक छीन लेंगे। ऐसे शासकों के शासन में रहना सब के लिये असंभव हो जायगा। जब वे ग्रामों में नगरों में रह कर अपना निर्वाह न कर सकेंगे, तो बस्तियों को छोड़ कर घोर वनों में चले जायँगे। वहाँ खेती बारी तो हो ही नहीं सकती। कुछ साधन भी न रहेंगे अतः पर्वतों की कन्दराओं में या वृक्षों के नीचे ही अपने डेरे डाल देंगे। वहीं जीवन के दिनों को कष्ट पूर्वक बितावेंगे। वनों में पर्वतों पर घास की पत्ती, शाक आदि जो मिल जायगा उसी को पशु की भाँति खाकर जीवनयापन करेंगे। पर्वतों में अपने आप उत्पन्न होने वाले कड़वे कसैले कंद मिलते हैं। निर्धन पहाड़ी अब भी उन कन्दों को उबाल कर खाते हैं। वह कंठ में खुजली भी करता है और स्वाद भी उसका कड़वा होता है, इसलिये पहाड़ी उसे उबाल कर उसकी बत्ती-सी बना कर शीघ्रता से निगल जाते हैं, उस से पेट तो भर जाता है किन्तु कण्ठ और मुख में अत्यन्त ही कष्ट होता है। कलियुग की प्रबलता होने पर सभी उन कंदों को ढूँढ़ते फिरेंगे और उन्हीं को खाकर निर्वाह करेंगे।

वनों में कोई पशु पक्षी मिल जायगा तो उसको मार कर उसके मांस को संस्कृत भी न करेंगे, वैसे ही कच्चा खा जायँगे। कहीं मधु मक्खियों का छत्ता देखेंगे तो उसी से मधु चुरालेंगे, उसी को खाकर अपनी रसना को शांत करेंगे। जङ्गली फल मिल जायँ तो उन्हीं को खाकर रह जायँगे, फूल, अंकुर जो भी खाये सकते हैं सभी को खाकर इस पापी पेट को भरेंगे। गुठलियों से अपनी भूख की ज्वाला को शांत करेंगे। जैसे हरिण बन्दर त अन्यान्य पशु पक्षी पेट भरने को ही इधर उधर घूमते रहते

वैसे ही कलियुगी लोग एक मात्र उदर को ही भरने को यहाँ से वहाँ वहाँ से यहाँ ऐसे मारे मारे फिरेंगे।

अधर्म बढ जाने पर ऋतुएँ विपरीत हो जायँगी जब वर्षा की आवश्यकता होगी तब तो वर्षा होगी नहीं जब आवश्यकता न होगी, तब अत्यन्त मूसलधार वृष्टि हुआ करेगी। कभी कभी बहुत समय तक वर्षा ही न हुआ करेगी, अनावृष्टि के कारण बहुत से लोग असमय मे ही मर जाया करेंगे। कभी इतनी वृष्टि हुआ करेंगी कि उस वृष्टि के कारण ही बहुतों की मृत्यु होगी। सारांश यह है कि दिन दिन प्राणियों का क्षय ही होता जायगा। शासक ऐसे क्रूर नीच और निर्दयी हो जायँगे, कि जहाँ भी लोगों को देखेंगे वहीं कर लगा देंगे। कभी कभी ऐसा शीत पडेगा कि बहुत से लोग शीत पाले से ही मर जायँगे कभी गरमा घाम की प्रबलता से लोगों की मृत्यु होगी। बड़ी भयकर कर्कश मारक वायु चलेगी उससे प्राणियों का सहार होगा। झगडा तो लोग बात बात पर करेंगे। अपने सगे सम्बन्धियों को लोग निर्दय होकर गाजर मूली की भाँति काट दिया करेंगे।

पृथिवी की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जायगी। खाद्य सामग्री का दिनों दिनों अभाव होता जायगा। लोग लोक पर लोक सब कुछ भूल कर दाने दाने अन्न के लिये व्याकुल बने रहेंगे। किसी के पास अन्न का सचय न रहेगा। मुट्ठी भर अन्न के लिये स्त्रियाँ अपने सतीत्व को बेच देंगी। भूख के कारण माता बच्चे को बेच देंगी। भूख और प्यास मे व्याकुल नर ककाल स्त्री पुरुष इधर उधर घूमते वृक्षों के नीचे पडे चिल्लाते सर्वत्र दिखायी देंगे। तिस पर भी उनके शरीरों में नाना प्रकार की कुष्ट अतिसार अर्श, भगदर, राजदमा आदि भयकर भयकर व्याधियाँ होंगी। कोई किसी का सहायता न करेगा। ऐसा कोई भी दृष्टि गोचर न होगा, जो आधि व्याधियों से निरन्तर ग्रस्त न रहता हो। सब का

जीवन अनियमित हो जायगा । ७।७।८।८ वर्ष की कन्यायें प्रसव करने लगेंगी। उनकी सन्तान अत्यन्त निर्बल और रोग ग्रस्त होंगी। वे १० १२ वर्ष तक जीवित रह गये तो बहुत समझो। कलियुग में जहाँ कोई सुनेंगे कि अमुक स्थान पर ३० वर्ष का एक वृद्ध है, तो उसे देखने दूर दूर से लोग आया करेंगे। बीस वर्ष तक कोई विरला ही जीवित रहेगा। बीस तीस वर्ष की आयु सब से बड़ी परमायु मानी जाया करेगी।

रज वीर्य के अपरिपक्व तथा निर्बल होने से बच्चे मूसों की भाँति उत्पन्न हुआ करेंगे। उनके शरीर अत्यन्त छोटे छोटे हुआ करेंगे। निर्बल, रोगी, ठिंगने और निर्वीर्य स्त्री पुरुष कंकालों की की भाँति चूहे बिल्लियों के बच्चों के समान इधर उधर बिना घर द्वार के फिरते रहेंगे। उनमें आचार विचार न रहेगा। वर्णा श्रम धर्म तो लुप्त प्रायः हो ही जायगा। पेट की चिन्ता ही मुख्य चिन्ता हो जायगी। वेद मार्ग का कहीं कहीं नाम सुनायी देगा। या तो धर्म रहेगा ही नहीं, जो कुछ यत्किंचित रहेगा भी वह केवल पाखंड ही पाखण्ड रह जायगा। राजा भी न रहेंगे। जो नाम मात्र के राजा रहेंगे भी वे चोरों का सा आचरण करेंगे। किसी की अच्छी वस्तु देखी उठा ले गये। किसी को खाते देखा, छीन ले गये। किसी की हिंसा करके, चोरी करके, असत्य बोल कर या पाखण्ड रच कर जैसे भी पेट भरेगा उसी काम को लोग बड़े हर्ष के साथ करेंगे। सत्य असत्य सदाचार दुराचार इसका तो कोई भेद भाव रहेगा ही नहीं।

धर्म, राज व्यापार तथा सेवा के लिये जो चार वर्ण थे वे कलियुग के अन्त में न रहेंगे। सभी प्रायः एक ही वर्ण के वृषल बन जायँगे। ब्रह्मचारी, सन्यासी आदि त्याग प्रधान आश्रम वाले कहीं दिखायी ही न देंगे। जो ऐसा वेष बना भी लेंगे उनमें एक भी ऐसा न होगा जो स्त्री को न रखता हो। एक ही आश्रम पतित

गृहस्थियों का रह जायगा। सब मैथुन धर्मी हो जायँगे। अपने माता पिता के सम्बन्ध से सम्बन्धी न माने जायँगे। लडके की जहाँ बहू आयी, तहाँ वह माता, पिता, भाई आदि से पृथक हो जायगा, फिर उन्हें अपना सम्बन्धी भी न कहेगा। यदि सम्बन्धी समझे भी जायँगे तो बहू के सम्बन्ध से। सारे सरहज, सास ससुर तथा सालियाँ इन्हीं का सम्बन्धी शब्द से बोध होगा। माता, पिता, भाई, बहिन, मौसी, चाची, ताई, चाचा, ताऊ, तथा भाभी आदि इन सम्बन्धों को कोई न मानेगा।

जौ गेहूँ के वृक्ष घास के समान हो जायँगे। अन्न बहुत छोटे राई समा के समान हो जायँगे। गौएँ बकरियों के समान छोटी छोटी हो जायँगी। अधपाव दूध दे दिया तो बहुत दे दिया। घृत का केवल नाम शेष रह जायगा। घृत कहीं सुनेंगे तो दूर दूर से लोग उसे देखने आया करेंगे कि घृत कैसा होता है। वट, पाकर, पीपर आदि के वृक्ष छोटे छोटे हो जायँगे। वे कहीं कहीं दिखायी देंगे नहीं तो छोंकरा, करील, बबूर आदि के छोटे छोटे वृक्ष ही अधिकतर अवशेष रह जायँगे। मेघ गरज कर रह जायँगे, कभी कभी बिजली चमक जाया करगी, किन्तु समय पर कभी वर्षा न होगी।

घर बहुत कम रह जायँगे, जो घर रह भी जायँगे वे गृह धर्म से शून्य हो जायँगे। गृह बनाने का एक मात्र उद्देश्य शास्त्रकारों ने यही बताया है, कि घर पर आया हुआ अतिथि असत्कृत होकर न लौटे। उसका यथा शक्ति कुछ न कुछ सत्कार अवश्य हो। घर में अन्न न भी हो तो कुशा की घास फूँस की चटाई न हो तो भूमि पर ही बिठा दे। एक लोटा जल दे दे। मीठी मीठी दो बातें ही पूछ लीं। घर वालों का मुख्य धर्म ही अतिथि सत्कार है। कलियुग में सभी घर इस धर्म से शून्य होंगे। अतिथि के सत्कार की तो कौन कहे लोग घर पर आये अतिथि से बोलेंगे

भी नहीं। उससे बैठने को भी न कहेंगे। बैठना चाहेगा भी तो उसे निकाल देंगे।

इतना सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी! अब रहने भी दो। उन बातों को सुन सुनकर तो हमारा हृदय फटता है। महाभाग! ये दिन हमें देखने न पड़ें इसीलिये, तो हम नैमिषारण्य की पुण्य भूमि को त्यागकर यहाँ जनलोक में चले आये। यहाँ इस दिव्य लोक में भी हमें इन बातों को सुनकर क्लेश हो रहा है। अब यह बताइये कि इन सब अन्याय अत्याचारों का कहीं अन्त भी होगा, या इन अन्यायों के अनन्तर प्रलय ही हो जायगी?"

सूतजी बोले—"महाराज! युग के अन्त में प्रलय थोड़े ही होती है। प्रलय तो कल्प के अन्त में होती है। घोर कलियुग के पश्चात् तो शुद्ध सत्वमय सत्ययुग आ जाता है। धर्म के जब चारों पैर नष्ट हो जायँगे, अधर्म जब पराकाष्ठा पर पहुँच जायगा, तब धर्मरूप भगवान् पुनः धम को चतुष्पाद बनाने के लिये कल्किरूप से अवतीर्ण होंगे।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! अवतार धारण करके भगवान् क्या करेंगे।"

सूतजी बोले—"महाराज! और क्या करेंगे धर्म की संस्थापना करेंगे। इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के एकमात्र गुरु सर्वेश्वर सर्वान्तर्यामी सर्वात्मा श्रीहरि अवतार धारण करके धर्म की संस्थापना, अधर्म का क्षय, दुष्टों का विनाश तथा साधु पुरुषों का परित्राण तो किया ही करते हैं। वे अपने भक्तों के जन्मकर्मों के बन्धनों का विच्छेद करके उन्हें दिव्य सुख दिया करते हैं। वे जगत् पति भगवान् अणिमा, गरिमा, लघिमा, ईशत्व, वशित्वादि सिद्धियों के ऐश्वर्यों से युक्त होंगे। उनकी बराबरी संसार में कोई भी न कर सकेगा। उन्हें स्वयं एक देवदत्त नाम का घोड़ा प्राप्त जायगा। उस घोड़े पर कल्कि भगवान् चढ़ जायँगे और हाथ

तीक्ष्ण तलवार लेकर पृथिवी पर विचरण करेंगे। जो दस्युधर्मी अधर्मी शासक होंगे उन सब को अपनी तीक्ष्ण करवाल के घाट उतार देंगे राजाओं का वेष बनाये क्रूर कुटिल लम्पट करोड़ों दस्युओं का वे संहार कर देंगे। दस्युओं के नष्ट होते ही यहाँ का वायुमंडल विशुद्ध बन जायगा। उसमें भगवान् के श्रीअङ्ग की विशुद्ध दिव्य सुगन्धि फैल जायगी। उसके सूँघते ही सबकी बुद्धि शुद्ध हो जायगी। सहसा सबके मनमें धर्म भावना जाग्रत हो उठेगी। भगवान् कल्कि के श्रीविग्रह में दिव्य अङ्ग राग की सुगन्धि वायु के साथ मिलकर सबकी घ्राण इन्द्रिय द्वारा हृदय में प्रविष्ट हो जायगी। उससे दशों दिशाओं के अमंगल नष्ट हो जायँगे। चाहें वन में रहने वाले हो या नगर तथा पुरों में वास करने वाले हों सभी के चित्त उस पावन गन्ध से निर्मल तथा पवित्र हो जायँगे।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आप तो पीछे कह आये हैं, कि कलियुग के अन्त में सब बलहीन निर्वीर्य अल्पायु होंगे। बीस या तीस वर्ष की परमायु समझी जायगी। उनसे सत्ययुग की स्थापना कैसे हो सकेगी?"

सूतजी बोले—"भगवन् आधि व्याधि अल्पायु ये सब पाप के कारण होते हैं। चाहे वे कितने भी अल्पायु क्यों न हों, जब उनका हृदय शुद्ध हो जायगा और उस शुद्ध मन में सत्वमूर्ति भगवान् वासुदेव विराजमान हो जायँगे, तब उनकी सन्तति उत्तरोत्तर स्थूलकाय और दीर्घजीवी होती जायगी। प्रत्येक युग के आदि में सन्धि और प्रत्येक युग के अंत में सन्ध्यांश होता है। जब कलि का अन्त होगा तब दिव्य एक सौ वर्ष अर्थात् मनुष्यों के वर्षों से छत्तीस हजार वर्ष का सन्ध्यांश काल होगा और सत्युग के पहिले दिव्य चार सौ वर्षों का अर्थात् मनुष्यों के वर्षों से एक लाख चौबीस हजार (१२४०००) वर्षों का सन्धि काल

रहेगा। अर्थात् एक लाख साठ हजार वर्षों में शनैः शनैः लोगों के भावों में आयु में बल में वृद्धि हो जायगी। जैसे कलियुग के अन्त में प्रायः सब लोग २० वर्ष तक जीते थे। भगवान् कल्कि के अवतार के पश्चात् उनके पुत्र इक्कीस वर्ष के होंगे। उनका शरीर भी सुडौल होगा। इसी प्रकार उत्तरोत्तर लोगों की आयु वृद्धि होती रहेगी और सन्धि सन्ध्यांश कालबीतने तक लोगों की लाखों वर्षों तक की आयु होने लगेगी। सबका मन निर्मल हो जायगा। वर्णाश्रम धर्म की पुनः प्रवृत्ति होने लगेगी सभी धर्म कर्मों में हो जायँगे। कलियुग के सन्ध्यांश काल में भगवान् कल्कि का अवतार होगा और तभी से सत्ययुग लग जायगा। तब फिर लोगों की सत्व में अभिरुचि होगी। आगामी सन्तानें सात्विक विचार की होने लगेंगी।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! सत्ययुग किस सम्वत् से आरम्भ होगा ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! न जाने तब तक कितने सम्वत्सर प्रचलित होंगे, कितने लुप्त हो जायँगे। युग प्रमाण में सम्वतसरों की गणना नहीं की जाती। यहाँ तो ग्रहों की चाल के ऊपर निर्भर रहता है। जब चन्द्रमा, सूर्य और पुष्य नक्षत्र में वर्तने वाले बृहस्पति ये तीन ग्रह एक राशि पर आ जाते हैं, उसी समय से सत्ययुग वर्तने लगता है। इसमें अभी लाखों वर्ष की देरी है।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! अब तक कलियुग के कितने दिन बीते हैं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! श्रीकृष्ण भगवान् ने जिस दिन इस धराधाम को त्यागा, उसी दिन से कलियुग की गणना की जाती है। आज के दिन (मार्गशीर्ष) शुक्ला नवमी विक्रम सम्वत्) तक कलियुग के ५ बीते हैं। महाराज परीक्षित् का जि

दिन जन्म हुआ था उस दिन से लेकर प्रथम नन्द के राज्याभिषेक तक एक सहस्र एक सौ पन्द्रह वर्ष हुए थे। उसके पश्चात् और राजागण हुए जिनका वर्णन मैं पीछे कर ही चुका हूँ इस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र वंश मे हुए समस्त राजाओं के चरित्र का मैंने आप से वर्णन किया। जो अधिक धार्मिक हुए हैं, उनका चरित्र तो व्यास ने वर्णन किया और जो ऐसे ही साधारण हुए हैं उनका समास से ही वर्णन किया है। भावी राजाओं का भी अत्यन्त संक्षेप में वर्णन किया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! महाराज परीक्षित् किस काल में हुए ?"

सूत जी बोले—"भगवन् ! जब आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र इस धरा धाम को छोड कर स्वलोक पधारे तभी महाराज परीक्षित् का राज्याभिषेक हुआ। ज्योतिष विद्या विज्ञो का कथन है कि सप्तर्षियों के सात तारे आकाश मे प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। उनमें से दो तारे प्रथम उदित होते हैं। उन दो प्रथम उदित तारों के बीच मे दक्षिणोत्तर रेखा पर सम भाग में ही ये जितने अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि अट्ठाईस नक्षत्र हैं उनमें से एक नक्षत्र दिखायी देता है, जो नक्षत्र दिखायी देता है, उसी के आश्रय से सप्तर्षि माने जाते हैं। जैसे उन दो तारों के बीच में दक्षिणोत्तर रेखा पर सम भाग में अश्विनी नक्षत्र है तो कहा जायगा कि आज कल सप्तर्षि अश्विनी के आश्रय से स्थित हैं, अश्विनी के पश्चात् भरणी का आश्रय लेंगे। इसी प्रकार अट्ठाईस सौ वर्ष के पश्चात् फिर अश्विनी का आश्रय लेंगे। मनुष्यों की आयु से एक सौ वर्ष तक सप्तर्षिगण उसी नक्षत्र का आश्रय लेकर उसी स्थिति में अवस्थित रहते हैं। जिस समय महाराज परीक्षित् गंगा तट पर गुरुदेव भगवान् शुक से श्रीमद्भागवत की कथा सुन रहे थे

थे। उसी क्रम से गणना कर लीजिये। जब तक सप्तर्षि अश्लेषा नक्षत्र के आश्रय स्थित थे, तब तक धरा धाम पर भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र अवस्थित रहे। जब सप्तर्षिगण अश्लेषा को छोड़ कर मघा पर आये उसी समय भगवान् स्वधाम पधार गये और तभी से दिव्य बारह सौ वर्ष रहने वाला कलियुग आ गया। आ तो कलियुग पहिले ही गया था, किन्तु भगवान् के सम्मुख उसे अपना प्रसार करने का साहस न हुआ। जिस भूमि पर भगवान् वासुदेव का विशुद्ध सत्वमय विग्रह अवस्थित है, जिस भूमि का स्पर्श भगवान् के पावन पादारविन्द किये हुए हैं, उसका स्पर्श कलि कैसे कर सकता है, अतः श्री कृष्ण के सम्मुख कलियुग की दाल नहीं गली। ज्यों भगवान् परम धाम पधारे त्यों ही कलियुग ने अपना विस्तार करना आरम्भ कर दिया। कलियुग के प्रभाव से ही प्रभावित होकर गौ ब्राह्मण रक्षक साधुओं के सत्कार करने वाले, श्री कृष्ण को ही अपना कुल देव समझने वाले सम्राट परीक्षित् ने ध्यानावस्थित मुनि के कंठ में मृतक सर्प डाल दिया। कलि का प्रभाव न होता तो पांडु के प्रपौत्र धर्मराज के पौत्र और अभिमन्यु के पुत्र महाराज परीक्षित् ऐसा अनर्थ कभी कर सकते थे? कदापि नहीं स्वप्न में भी नहीं, किन्तु कलियुग का तब तक प्रसार हो न होता जब तक राजा अन्याय न करता, क्यों कि जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा हो जाती है। महाराज परीक्षित् धर्मात्मा थे इसलिये उनके पुत्र जन्मेजय ने भी धर्म का पालन किया। उनके राज्य में भी कलियुग बढ़ने नहीं पाया। हाथ सिकोड़े बैठा रहा। जब ग्यारह सौ वर्ष बीत गये और सप्तर्षि मघा से पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में आये, उसी समय राजा नन्द का राज्य हुआ। तभी से कलिकाल की वृद्धि होने लगी। जब से पांच सहस्र वर्ष बीत गये तब से तो यह और भी अधिक बढ़ गया है। विदेशी विधर्मियों ने आकर कलों का प्रचार करके

आदि का अशुद्ध धूँआ फैला कर सर्वत्र कलि का प्रचार किया। ये विनाशक यन्त्र कलियुग की अभिवृद्धि में अत्यधिक सहायक हुए हैं। इसी प्रकार लोग यन्त्रों के अधीन होकर जड़ता की ओर बढ़ते जायँगे। एक दूसरे का विनाश करने मे ही लोग उन्नति समझेंगे। दिन दिन सद् गुणों का ह्रास होता जायगा। जब कोई वस्तु अत्यन्त नीचे गिर जाती है, तो फिर उसका उत्थान होता है। इसी प्रकार जब धर्म का सर्वथा ह्रास हो जायगा, तो वह फिर उन्नत होगा कलियुग के बीतने पर पुन: सत्ययुग का आरम्भ होगा।

इक्ष्वाकुवंश के महाराज मरु तक सूर्य वंश की विशुद्धता रही। फिर वे उत्तरा खण्ड को चले गये और वहाँ अभी तक तप कर रहे हैं। इसी प्रकार चन्द्र वंश में महाराज प्रतीप तक तो विशुद्धता रही। प्रतीप के देवापि, शन्तनु और बाह्लीक ये तीन पुत्र हुए। यहीं से कलियुगी भाव आरम्भ हुए। नियमानुसार बड़े होने के कारण देवापि राज्य के अधिकारी थे, किन्तु तप में अधिक रुचि होने के कारण वे वन मे तप करने चले गये। शन्तनु राजा बन गये। फिर छल पूर्वक उन्हें वेद विरुद्ध घोषित करा दिया। कहना चाहिये कलियुग का सूत्र पात उसी समय से हो गया था। भगवान् के कारण और देवताओं के अंश से उत्पन्न पाडवों के कारण यह रुका रहा। कलियुग के अन्त होने पर शन्तनु के भाई देवापि फिर से विवाह करके चन्द्रवंश की स्थापना करेंगे और महाराज मरु सूर्य वंश को। ये दोनों ही बीज रूप से कलि

के अन्त तक, महान् योग बल से सम्पन्न होकर कलाप ग्राम में स्थित रहेंगे। सत्ययुग के आरम्भ होने पर ये दोनों भगवान् वासुदेव की प्रेरणा से वर्णाश्रमधर्म की पूर्व की भाँति स्थापना करेंगे। फिर विशुद्ध क्षत्रिय होने लगेंगे। फिर त्रेता आवेगा उसके अन्त में द्वापर फिर कलियुग। ऐसे ही क्रमशः ये युग वर्तते रहते हैं। जब य चरों युग ७१ बार बीत जाते हैं तब एक मन्वन्तर हो जाता है। मनु, इन्द्र, देवता तथा सप्तर्षि आदि सभी बदल जाते हैं। जब ये चारों युग सहस्र सहस्र बार बीत जाते हैं, तब ब्रह्मा जी का एक दिन होता है, ब्रह्मा जी इस त्रिलोकी के पसारे को समेट कर सो जाते हैं। जैसे रथ के पहिये के चक्र कभी ऊपर आते हैं, कभी नीचे चले जाते हैं, फिर नीचे से ऊपर आ जाते हैं, ऐसे संसार की गति है। इसीलिये इसे संसार चक्र कहते हैं। जैसे मैंने क्षत्रिय राजाओं के वंश बताये वैसे ही ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्रों के वंश की भी परम्परा है। कितने बड़े बड़े ऋषि महर्षि, चक्रवर्ती राजा भूपाल इस पृथिवी पर चुके हैं। वे उनके नाम लेने से ही लोग उन्हें पहिचान जाते थे। अब उनकी केवल कथा ही कथा शेष रह गयी है, वे अपनी दिगन्त व्यापी कीर्ति को छोड़ कर न जानें कहाँ विलीन हो गये। उनका यह पाञ्च भौतिक शरीर तो स्थिर नहीं रहा, किन्तु उनकी विमल कीर्ति अद्यावधि विद्यमान है।

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो ! यह पृथिवी न आज तक किसी की हुई है, न होगी। जो अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं, वे ही इसे मेरी मेरी कहते हैं और अन्त में इसे यहीं छोड़ कर काल के गाल

मे विलीन हो जाते हैं। उनकी मूर्खता पर पृथिवी देवी ने हँसते हुए गीत गाये हैं उनका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

अति अधर्म जब बढ़ै कल्कि प्रकटें सभल मह।
विष्णुयशा द्विज गेह सिद्धि अणिमादिक सँग महँ॥
लीये कर करवाल अश्व चढि दुष्टनि मारैं।
सब पापिनि कूँ हनैं सकल शत्रुनि संहारैं॥
दिव्य गन्ध हरि देह की, तै सब की हो विमल मति।
बढ़ै धर्म अधरम घटै, सतयुग पुनि शुचि होहि अति॥

—::o::

वसुधा गीत

(१३४७)

दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान् हसति भूरियम् ।
अहो मां विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ *

(श्री भा० १२ स्क० ३ अ० १ श्लो०)

छप्पय

सूर्य चन्द्र के भये, होहिँ, हैं भूप बताये ।
कलि तबई तैं लग्यो श्याम जब धाम सिधाये ॥
ऐसे ही सब वंश होहिँ युग युग में मुनिवर ।
समय पाइकें नसें काल की क्रीड़ा कटुतर ॥
मैं मेरी करि नृप गये, नहिँ वसुधा तिनिकी भई ।
मिल्यो धूरि में विभव सब, कथा शेष ई रहि गई ॥

यह मानव प्राणी जो अपने को बड़ा भारी बुद्धिमान लगाता है। यह आँख रहते हुए भी अंधा है, बुद्धि रहते हुए भी अविवेकी है। नित्य ही देखते हैं, अमुक राजा उस भूमि के लि

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! पृथिवी जब देखती है, कि ये राजागण मुझे जीतने के लिये व्यग्र बने हुए हैं, तो उन्हें देख कर यह हँसती है और कहती है—"अरे, ये मृत्यु के खिलौने रूप राजा जीतना चाहते हैं? ये स्वयं ही मर्त्यधर्मी हैं ये मुझे क्या जीतेंगे।"

जीवन भर लडा। लाखों सैनिकों के रक्त से इस वसुधा को रक्त रञ्जित किया, अन्त में उसे जीता। अपनी बनाया। उसे मेरी कहने लगा। चार दिन भी उसे अपनी न कह सका अन्त में काल के सम्मुख परास्त हो गया। सबको यहीं छोडकर मृत्यु के फंदे में फँस गया। काल का कवल बन गया। इसे अन्धा न कहें तो क्या कहे।

जिसे तनिक भी बुद्धि है वह भी इस बात को समझ सकता है, कि मैं और मेरी इस शरीर के सम्बन्ध से है। मेरी भूमि मेरी वस्तुएँ आदि आदि जिसके सम्बन्ध से तुम इन वस्तुओं को अपनी कहते हो, अरे मूर्खो यह देह भी तो नाशवान् है उसका भी तो ठिकाना नहीं कब व्यर्थ बन जाय। जिसके सम्बन्ध से तुम अपनी कहते हो, जब वही क्षण भगुर है, तो उससे सम्बन्ध रखने वाले नश्वर पदार्थों में ममता रखना मूर्खता नहीं तो क्या है। यह सब जानते हुए भी मनुष्य इसे मानता नहीं इसे जडता के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं।

विवेक पूर्वक विचारने से यह बात समझी जा सकती है कि जैसा कारण होता है वैसा ही उसका कार्य होता है। मिट्टी से जो भी वस्तु बनेगी मिट्टी की ही होगी। सुवर्ण का जो भी आभूषण बनाओ—उसका चाहे जो नाम रख दो—रहेगा वह सुवर्ण ही। इसी प्रकार सडने वाले खाद्य पदार्थों से यह शरीर बढता है पुष्ट होता है। तो यह भी उसी के धर्म वाला होगा। एक दिन यह भी सडेगा नष्ट होगा। जब बीज ही नाशवान् है तो उसके शाखा पत्ते आदि अविनाशी कैसे होंगे। नित्य देखता हुआ भी अन्धा बना रहता है, इसे भगवान् की माया के अतिरिक्त और कह ही क्या सकते हैं?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने जितने प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजा हुए हैं, अब हैं तथा आगे होंगे, उनके सम्बन्ध में आपसे कहा।

पृथिवी के समस्त रज कण प्रयत्न करने पर गिने भी जा सकते हैं, किन्तु इस धराधाम पर कितने भूपति हो चुके हैं इसकी गणना कोई नहीं कर सकता। असंख्यों भूपति हुए हैं असंख्यों अब भी हैं और असंख्यों आगे भी होंगे। जितने भूमिपति हुए हैं वे सब इस भूमि को अपनी कहते थे। इसमें अत्यधिक ममता करते थे। उनकी सीमा में से कोई तिल भर भी भूमि लेता तो प्राणों का पण लगाकर उससे लड़ते। बार बार कहते—"यह तो मेरी है। यह तुम्हारी हो ही नहीं सकती। वे ऐसे ही मेरी कहकर मर गये। पृथिवी किन्हीं की आज तक नहीं हुई। ये सबके सब राजा इस पृथिवी को यहीं छोड़कर अन्त में स्वयं नष्ट हो गये।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! राजा का तो धर्म ही यह है, कि वह भूमि के लिये धर्म युद्ध करे।"

गम्भीर होकर सूतजी ने कहा—"क्या धर्म है महाराज, एक अनित्य नाशवान् वस्तु के लिये प्राणियों से द्रोह करना। आप सोचिये राजा किसे कहते हैं। यदि आप आत्मा को राजा कहते हैं, तो आत्मा तो एक है, उसमें स्व पर भेद है ही है नहीं। उसे किसी वस्तु को प्राप्त करना ही नहीं है। प्राप्त तो उसे करना पड़ता है, जिसे किसी वस्तु का अभाव हो। आत्मा तो परिपूर्ण है। यदि आप देह को राजा कहते हैं, तो देह तो चाहे राजा की हो या भिक्षुक की सभी एक सी हैं, सभी पाञ्चभौतिक हैं, सभी सभी मरणशील हैं। मृतक होने पर राजा के शरीर की भी तो यही गति है। यदि कहीं वन में पड़ा रहा तो सड़कर कीड़े हो जायँगे। यदि सियार, कुत्ता, कंक गृद्ध, कछुआ, मगर, मत्स्य आदि जीवों ने खा लिया तो पचकर विष्ठा बन जायगी और किसी ने अग्नि में जला दिया, तो दो मुट्ठी भस्म हो जायगी। राजा का शरीर कोई सुवर्ण का तो होता नहीं जो कभी न सड़े न

गले। उसके भी शरीर की ये ही गतियाँ हैं। तब फिर व्यर्थ इन नाशवान् पदार्थों में ममता करने से क्या लाभ। ममता करोगे, तो प्राणियों से द्रोह करना ही पड़ेगा। द्रोह करोगे तो सच्चे स्वार्थ से भ्रष्ट होंगे। जब तक जीवित रहोगे चिन्ता घेरे रहेगी। मरने पर नरक की यन्त्रणायें सहनी पडेगी। इतने धर्मात्मा पांडव जो देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे। साक्षात् परब्रह्म परमात्मा जिनकी सेवा में सदा संलग्न रहते थे, उन्हें भी जब पृथिवी के लिये लड़ना पडा, तो झूठ बोलना पडा और नरक का द्वार देखना पड़ा तो अन्य साधारण छली प्रपञ्ची राजाओं के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या?

ये मृत्यु के खिलौने राजा निरन्तर यही सोचते रहते हैं—"इस पृथिवी पर मेरे पिता पितामह प्रपितामह वृद्ध प्रपितामह तथा अन्यान्य वंश वालों ने शासन किया इस पर मेरा, मेरे पुत्रों का पौत्रों का तथा प्रपौत्र आदि आगामी वंश वालों का कैसे अधिकार बना रहे। उन मूर्खों को यह ज्ञात नहीं कि इस शरीर का कोई ठिकाना नहीं। इस क्षण जो राजा है दूसरे ही क्षण वह बन्दी भिक्षुक तथा अन्यों का आश्रित बन सकता है। ऐसी स्थिति में आगामी पीढ़ियों के सम्बन्ध में सोचना अज्ञान नहीं तो और क्या है?

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! इस शरीर की अनित्यता को समझते हुए भी लोग इतनी ममता क्यों करते हैं?"

हँसकर सूतजी ने कहा—"महाराज! इसी का नाम तो माया है। वे इस शरीर को अनित्य मानते ही नहीं। पचभूतों से निर्मित अन्न जल और तेज के विकार से बने इस शरीर को ही वे आत्मा मानते हैं। वे समझते हैं हम सदा अजर अमर बने रहेंगे। वे यदि यह हृदय से समझ लें, कि एक दिन सबको छोड़कर हमें मरना है, तो फिर वे ममता करें ही क्यों। जिस

शरीर को आत्मा मानते हैं। और उसी के सम्बन्ध से भूमि आदि में ममता करते हैं, अन्त में वे देह और उसके सम्बन्ध से अपनी मानने वाली भूमि आदि को भी यहीं छोड़कर जाने कहाँ चले जाते हैं। काल के उदर में लीन हो जाते हैं। जो राजा भूमि को अपनी कहते थे वे तो अब दीखते नहीं, उनमें से कुछ की कथा अवश्य अवशेष रह गयी है। जो बड़े बड़े प्रतापी राजा थे, जिनका उदय से अस्त पर्यन्त साम्राज्य था। जिनके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था। वे राजा भी अब दिखायी नहीं देते। जिन्होंने घोर तपस्या करके अजर अमर होने का देवताओं से वर प्राप्त कर लिया था, अन्त में वे भी मर गये, अब उनके भी दर्शन दुर्लभ हो गये। जब इतने बड़े बड़े चक्रवर्ती सम्राट ही पृथिवी को अपनी नहीं बनाये रखे तो इन क्षुद्र भूमिधरों की तो गणना ही क्या है। जब ये थोड़ी सी भूमि वाले भूपति भूमि को पाने को इसे विजय करके अपनी बनाने को व्यग्र होते हैं, तो इनकी व्यग्रता को देखकर भू देवी हँस जाती हैं और मन में सोचती है—"ये काल के खिलौने अल्पज्ञ मनुष्य मुझे कैसे जीत सकते हैं मूर्ख ही नहीं विद्वान् राजाओं की भी यही कामना रहती है, वे देह की अनित्यता को भूल जाते हैं। उनकी मूर्खता पर भूमि देवी ठठका मारकर हँस जाती है और गीत गाने लगती है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी पृथिवी क्या गीत गाती है, कृपा करके हमें भी उसके कुछ गीतों का सारांश सुना दीजिये।"

सूतजी बोले—"महाराज! पृथिवी तो बहुत बड़ी है न? इसलिये वह बहुत गीत गाती है और बहुत बड़े बड़े गीत गाती है। उन बड़े बड़े गीतों में से कुछ छोटे छोटे दो चार गीतों का सारांश में आपको सुनाता हूँ, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।

भूमि कहती है—"देखो, ये राजा गण कैसे अज्ञ हैं। प्रथम

तो ये सैन्य संग्रह करके अपना बल बढाते हैं भाँति भाँति के अस्त्र शस्त्र संग्रह करके सैनिकों को रण सामग्री से सुसज्जित करते हैं। फिर शत्रु के देश पर चढाई करते हैं—"हम राजा, राजकुमार, मंत्री, सेनापति, पुरोहित तथा कोषाध्यक्ष को जीत लेंगे। फिर राज्य परिषद् के जितने मंत्री होंगे उन्हें स्वाधीन कर लेंगे। राज्य परिषद् को भंग कर देंगे। जो हमारी विजय के विरोधी मन्त्री, आमात्य, पुरवासी, आप्त पुरुष तथा अन्यान्य नागरिक होंगे उनका दमन करेंगे। शत्रु के कोष पर उसके भंडार पर तथा समस्त किलों पर अपना अधिकार जमा लेंगे। फिर हाथी, घोड़ा, रथ तथा सेना को अपनी कर लेंगे। उस समस्त देश के स्वामी हो जायगे। जब उस देश पर हमारा पूर्ण आधिपत्य हो जायगा, तो उससे आगे के देश पर अधिकार करेंगे। ऐसे ही क्रमशः सम्पूर्ण देश को अपने अधीन करेंगे। फिर बड़े बड़े पोत बनावेंगे। उनमें रण सामग्री भरकर समुद्र के उस पार के देशों पर अपना अधिकार जमावेंगे।" इसी प्रकार के वे मूर्ख राज्य लोलुप राजा अनेकों मनोरथ करते रहते हैं। एक दिन काल चुपके से आता है और धर दबोचता है, उनके मनोरथ मन के मन में ही रह जाते हैं। मुझे छोड़कर काल के अतिथि बन जाते हैं। यमराज के आगे थर थर काँपने लगते हैं। इन मूर्खों से कोई पूछे अरे, तुम समुद्र पार के देशों का जीतने में तो इतना उत्साह दिखाते हो, उन देशों के राजाओं को शत्रु समझ कर जीतना चाहते हो किन्तु तुम्हारे भीतर जो एक मन रूपी शत्रु बैठा है जिसके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि सहायक साथी हैं इन सबको प्रथम क्यों नहीं जीतते। जब तक इस मन रूपी प्रबल शत्रु को न जीतोगे, तब तक कितने भी देशों पर आधिपत्य कर लो तुम्हें सन्तोष न होगा, संसार की समस्त भोग सामग्री प्राप्त करके भी तुम व्यग्र ही बने रहोगे। सदा अशान्त होकर

इधर से उधर भागते फिरोगे। यदि तुमने सम्पूर्ण संसार के शत्रुओं को जीतकर सप्तद्वीपा वसुन्धरा को अपने वश में कर भी लिया तो तुम्हें क्या मिल जायगा। तुम्हारी तृष्णा तो शान्त होगी नहीं और यदि अकेले मन पर तुमने विजय पाली, तो यहाँ तुम्हें शान्ति मिलेगी और अन्त में मोक्ष के अधिकारी होंगे।

पृथिवी हँसती हुई गा गाकर कहती है—"इन क्षुद्र बुद्धि राजाओं की कुमति तो देखो, महाराज मनु जो मेरे सर्व प्रथम अधिपति हुए। जिन्होंने वंश चलाये जिनके नाम से मन्वन्तर चलता है। जो दूसरे ब्रह्मा ही माने जाते है, वे भी मुझे त्याग कर चले गये। उनके पुत्र प्रियव्रत उत्तानपाद कितने प्रतापी हुए। जिनके रथ के चक्र की लीक से सात समुद्र बन गये, उनका भी अब नाम ही शेष रह गया। जैसे ये आये थे वैसे ही चले गये न कुछ लेकर आये थे न कुछ लेकर गये। खाली हाथ की मुट्ठा बाँधकर आये थे और हाथ पसारे हुए चले थे। जब ये ही मुझे अपनी कहकर और अन्त में यहीं छोड़कर चले गये, तो जो मूढ़ मति अल्पज्ञ हैं, जिनकी आयु अल्प है, सामर्थ्य अल्प है, वे मुझे अपनी क्या बनावेंगे। वे युद्ध में मुझे जीत कर के दिन अपना शासन चलावेंगे।

राज्य लोलुपता हृदय में आते ही सौहार्द्र प्रेम और अपनापन नष्ट हो जाता है। जिसे भी अपनी इष्ट सिद्धि में विघ्न समझता है उसे ही नष्ट कर देता है। राज्य के पीछे कौरव पाँडवों में कैसा घनघोर युद्ध हुआ। भाई-भाई के रक्त का प्यासा बन गया। राज्य के पीछे पिता-पुत्र का, भाई-भाई का द्वेष हो जाता है, एक दूसरे की हत्या कर देते हैं। लाखों आदमियों को रण में झोंक देते हैं, हाथ कुछ भी नहीं लगता। या तो उसी युद्ध में समाप्त हो जाते हैं या उसके कुछ दिनों के पश्चात् इस

संसार से विदा हो जाते हैं। द्रोह, हत्या, वैर भाव, कलह और विद्वेष यहीं शेष रह जाते हैं।

जैसे कुत्ते मृतक के मांस के पीछे लड़ते हैं और लड़ते लड़ते घायल हो जाते हैं, वैसे ही ये राजा गण मेरे पीछे क्रोध मे भरकर लड़ते हैं। एक दूसरे की ओर दाँत पीसकर अस्त्र शस्त्र लेकर क्रोध में भरकर कहते हैं—"रे मूर्ख ! तू इतनी बढ़कर बातें क्यो बनाता है, इस पृथिवी का स्वामी मैं हूँ, यह वसुन्धरा तो वीर भोग्या है। मैं वीर हूँ, यह तो मेरी ही बन कर रहेगी। तुझे यदि बल का अभिमान है तो आ जा मेरे सम्मुख। अभी मैं तुझे मारकर पृथिवी का एक छत्र सम्राट बनता हूँ।" यह सुनकर वह भी क्रोध में भर कर इन्हीं बातोंका दुहराता है, फिर दोनों मेढ़ाओं की भाँति, सांडों की भाँति आपस में लड जाते हैं। एक दूसरे पर प्रहार करते हैं। मारे जाते हैं। मुझे अपनी बनाने को सभी लालायित रहते हैं, किन्तु मुझे कोई आज तक अपनी बना नहीं सका। मनुष्यों की यही तो कुमति है वेश्या के सम्मुख जो जाता है उसी के कंठ मे वह बाहु डाल देती है। अज्ञानी लोग समझते हैं यह अब मेरी हो गयी, मुझसे प्यार करती है, किन्तु वास्तव में वह किसी की होती नहीं। लोगों की मूर्खता पर वह मन ही मन हँसती है और सोचती है ? इन्हें मैंने अच्छा उल्लू बनाया। इसी प्रकार ये राजा भी उल्लू हैं। ज्ञान रूप सूर्य के होते हुए भी ये अन्धे बने रहते हैं। सूर्य की ओर देखते भी नहीं। यदि ये पिछले राजाओं के चरित्रों का भी विचार करें, तो भी इनका मोह दूर हो। किन्तु ये तो अपने को ही सब कुछ समझने लगते हैं। स्वस्थ चित्त होकर सोचें तो इन्हें पता चल जाय कि जो मुझे मेरी मेरी कहा करते थे वे भी मुझे छोड़ के न जाने कहाँ चले गये।

महाराज पृथु तो अवतार ही थे, मुझे जीतकर उन्होंने दुहिता बना लिया। पृथु की पुत्री होने से ही मेरा नाम पृथ्वी पड़ा है

उन्होंने ही अपने धनुष की नोंक से मुझे विषम से सम बनाया, किन्तु थोड़े दिनों तक अपना तुनतुना बजाकर न जाने कहाँ चले गये। अब उनका नाम ही नाम रह गया है।

प्रतिष्ठान पुराधीश महाराज पुरूरवा कितने प्रतापी थे स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी उनके रूप पर आसक्त होकर उनके महलों में रानी बनकर रहीं। कितना बड़ा उनका सौन्दर्य था कैसी उनकी सुगठित चित्ताकर्षक देह थी, किन्तु अब वह दिखाई नहीं देती। मेरी ही धूलि में उनकी देह नष्ट हो गयी।

महाराज गाधि कितने विश्वविख्यात थे। जिनके पुत्र विश्वामित्र इसी शरीर से क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गये। देवता भी आकर जिनको मस्तक नवाते थे, किन्तु अब उन महाराज गाधि की पुराणों में कथा ही कथा शेप रह गयी है, उनके शरीर की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।

महाराज नहुप के तेज, बल, वीर्य तथा शक्ति के सम्बन्ध में अब क्या कहा जाय। मर्त्यलोक के राजा होने पर भी इसी शरीर से स्वर्ग में देवताओं के राजा बनाये गये। बड़े बड़े देवर्पि और महर्षि खड़े होकर जिनकी स्तुति करते थे। ब्राह्मणों को कहारों की भाँति पालकी में लगाकर वे चला करते थे। अब उनका प्रताप न जाने कहाँ चला गया। अब वे नहीं रहे उनकी कहानी रह गयी।

महाराज भरत इस समस्त भू मंडल के राजा थे। अब तक मेरा कुछ खण्ड उन्हीं भरत के नाम से भरत खण्ड कहलाता है। भरत खण्ड तो अब तक है, किन्तु राजर्पि भरत अब नहीं रहे। जब भरत जैसे चक्रवर्ती भी नहीं रहे तो ये क्षुद्र राजा [illegible] रहेंगे।

सहस्रार्जुन के बलवीर्य की बात न पूछिये। सहस्र [illegible] से उसने सबको वश में कर लिया था। विश्वविजयी रावण

जिसने बन्दर की भाँति बाँध लिया था। जिसके नाम से देवेन्द्र भी डरते थे। अन्त मे उसकी सहस्रो भुजायें मेरी धूलि मे आत्मसात् हो गयीं। उनका वडा भारी डीलडौल का शरीर पचभूतों मे मिल गया। अब मेरे ऊपर सहस्र भुजाओ वाला एक भी पुरुष दिखायी नहीं देता।

मान्धाता महाराज की महिमा मानवीय मति के परे की बात है। पिता के पेट से पैदा हुए। इन्द्र ने अमृत पिलाकर जिनका पालन किया। अमृत पीकर भी वे मर गये। अब मान्धाता राजा किसी को दिखायी देते हैं। पिता के पेट से पैदा हो या माता के पेट से सबको मिलना है मेरा ही धूल मे।

महाराज सगर की कीर्ति अब भी दशों दिशाओ मे फैली है, जिनके पुत्रों ने पृथिवी को खोदकर सागर बना दिया। जिनके रथ के चक्र को रोकने की कोई भी उन दिनों सामर्थ्य नहीं रखता था, जो अपने समान स्वय ही थे। अब सागर के कारण उनका नाम अवशेष है। शरीर न जाने कहाँ चला गया।

अवधकुल मडन, रघुकुल कमल दिवाकर कोशल्यानन्द वर्धन दाशरथी राम तो साक्षात् परब्रह्म का अवतार ही थे। फिर भी वे राजा बनकर मेरे ऊपर अवतीर्ण हुए। उन्होंने भी सहस्रो अश्वमेध किये दिग्विजय की दशों दिशाओं को जीता। यह सब करके भी क्यों वे यहाँ बने रहे। उन्होने भी मर्त्य लीला समाप्त की। मुझे विलखती छोडकर न जाने वहाँ कहाँ रम गये। कटका से विद्ध अपने चरणो को मेरे वक्ष स्थल पर रखकर एक कसक छोड़कर वे भी मेरा परित्याग कर गये।

खट्वाङ्ग राजा के साहस को स्मरण करके मेरा शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। स्वर्ग मे जो आयु का मुहूर्त शेष रहने पर सत्सग के प्रभाव से मुक्त हो गये वे भी सदा मेरे ऊपर नहीं रहे तो ये अल्पायु कीट पतग राजा मेरा कै दिन भोग कर सकेंगे,

महाराज धुन्धुमार के वल की थाह कौन पा सकता है। इतने बड़े धुन्धु असुर को जो बालू के नीचे से फुफकार छोड़कर आकाश मंडल को धूलि से भर देता था। आकाश में नया समुद्र सा बना देता था, उसे भी जिन्होंने मार दिया उनकी बराबरी करने वाला कोई राजा है क्या ? जब धुन्धुमार भी मर गये, तो धूम्र मार राजा कैसे सदा जीवित रह सकेंगे। फिर भी ये साम्राज्य वृद्धि की लिप्सा का परित्याग नहीं करते यही प्रभु की मोहिनी माया है।

महाराज रघु के समान दानी कौन होगा, जो सर्वस्व दान करके निर्धन बन गये थे और विप्र की याचना पर कुवेर के ऊप चढ़ाई करने को उद्यत हो गये थे। उनके संकल्प से कुवेर ने रात गत उनके कोष को धन से भर दिया था, ऐसे प्रतापी राजा भं मुझे सदा के लिये छोड़कर चले गये, तो ये अत्यन्त कृपण लोभं दस्यु धर्मी नीच राजा कै दिन मुझे अपने वश में रखेंगे।

राजर्षि तृणविन्दु की उपमा किनसे दी जाय, जिन्होंने योग और भोग प्रवृत्ति और निवृत्ति तपस्या और राज्य सभी का विधि वत् अनुभव किया जिनमें निग्रह अनुग्रह शाप,वरदान की सभ शक्तियाँ थीं। काल ने उनको भी नहीं छोड़ा ऐसे धर्मात्मा भूपा भी मेरे ऊपर सदा न रह सके। वे भी पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

महाराज ययाति कितने प्रतापी हुए, जिन्होंने पृथिवी पर । वैकुण्ठ बना लिया, जिनके पुण्य प्रताप को देखकर यमराज के छक्के छूट गये। जो सर्व समर्थ थे, जिन्होंने आई हुई जरावस्थ को भी ठुकरा दिया। क्षत्रिय होकर भी जो शुक्राचार्य ऐसे ऋषि जामाता बने उनको भी कालने नहीं छोड़ा। उनकी भी अब केव कथा ही शेष रह गयी।

सम्राट शर्याति अपने समय के कितने शूरवीर प्रतापी औ धर्मात्मा थे। वे भी पृथिवी पति कहलाते थे, किन्तु अन्त में

भी सब यहीं छोडकर चले गये। उनके शरीर को अग्नि ने भस्मसात कर दिया। जब ऐसे ऐसे सम्राट भी सदा मेरा उपभोग न कर सके, तो ये अल्पवीर्य कलियुगी भूमिधर मुझे अपनी कैसे बनाये रखेंगे।

महाराज शन्तनु जिसके ऊपर भी हाथ रख देते थे–वही वृद्ध से युवक हो जाता था, अन्त में वे भी सुरपुर चले गये, उनके पुत्र देवव्रत भीष्म जिन्होंने मृत्यु को जीत लिया था, जो अपनी इच्छा से ही मर सकते थे, अन्त में उन्हें भी शरीर को त्यागना ही पडा।

महाराज गय के समान यज्ञ करने वाला तथा दानी ससार में कौन होगा जिनकी कीर्ति अब तक पुराणो मे गायी जाती है, लोकपाल स्वयं जिनके यज्ञों में आकर सोमपान करते थे और साधारण मनुष्यों के सदृश उनके यज्ञ कार्यों में योग देत थे। जा अपने समय क अद्वितीय ही माने जाते थे, कालने उनपर दया नहीं दिखायी। वे भी मेरे सदा स्वामी बने रहे। उन्हें भी एक दिन इस पाञ्च भौतिक शरीर को छोडना पडा।

जब तक संसार में गङ्गाजी रहेंगी तब तक महाराज भगीरथ का यश दिग दिगन्तों में व्याप्त रहेगा। जो राजर्षि स्वग से सुरसरि को ले आये जो मेरे ऊपर भागीरथी के नाम से अब तक प्रवाहित होती रहती हैं। उन महाराज भगीरथ का नाम तो शेष है, किन्तु अब वे दिखायी नहीं देते। वे भूत के गभ से विलीन हो गय।

महाराज कुवलयाश्व कितने प्रतापी हुए जो पाताल में जाकर वहाँ से विवाह कर लाये। जो अपने घोडे पर चढ़कर एक दिन में सब पृथिवी मडल पर घूम आते थे। जो शूरवीर, विद्वान्, बुद्धिमान्, दानी तथा सर्व विद्या निपुण थे वे भी एक दिन मुझे छोड़

गये। वे भी सदा मेरे स्वामी न रह सके। जब इतने सर्व समर्थ भूपति सदा न रह सके, तब अल्पज्ञों की तो कथा ही क्या है।

रघुकुल में एक से एक प्रतापी राजा हुए महाराज इन्द्रवाह कितने यशस्वी हुए इन्द्र को बैल बनाकर उसके ककुद् पर चढ़कर तब असुरों से लड़ने गये। इसीलिये उनका नाम ककुत्स्थ पड़ा। जिनके कारण भगवान् राम भी अपने को गर्व के साथ काकुत्स्थ कहते थे। वे महाराज इन्द्र को वाहन बनाने वाले इन्द्रवाह भी समय आने पर चल बसे।

महाराज नल कितने धर्मात्मा थे धर्म के लिये उन्होंने कैसे कैसे कष्ट सहे। उनकी पत्नी दमयन्ती कितनी पतिव्रता थी। महाराज नल की कीर्ति अब तक संसार में व्याप्त है किन्तु निषध देश के ऊपर शासन करने वाले वे महाराज नैषध अब नहीं हैं। न जाने उनके शरीर के पंचभूतों के परमाणु कहाँ मेरी धूलि में मिले पड़े होंगे। ऐसे कितने राजा मेरे ही उत्पन्न अन्न के अंश से उत्पन्न हुए और अन्त में उनका शरीर मुझमें ही मिल गया। न वे मेरे ऊपर कुछ लेकर आये और न मेरे ऊपर से कुछ लेकर गये।

महाराज नृग के दान धर्म की कोई सीमा ही नहीं। मेरे रजकणों की गणना हो सकती है, आकाश के तारागण गिने जा सकते हैं, किन्तु उन्होंने जितनी गौओं का दान दिया, इसकी गणना करना असंभव है। वे भी बड़े गर्व से अपने को वसुधाधिप कहते थे, राजसिंहासनपर बैठकर अपने को समस्त पृथिवी का स्वामी मानते थे। अन्त में राजा से गिरगिट हुए। उस गिरगिट का भी अब पता नहीं।

धर्मात्मा ही राजा मरे हों, या उनका ही नाम शेष रहा हो सो भी बात नहीं। बहुत से असुर भी मर गये, जिन्होंने बड़े अत्याचार किये। भगवान् के विरुद्ध जिन्होंने प्रचार किया। हिरण्यकशिपु ने अभिमान में भरकर प्रह्लाद को कितनी कितनी यात-

जायें ही। इस समय हिरण्यकशिपु की बराबरी करने वाला तीनों लोकों में कौन था। जिसके लिये स्वयं भगवान को खम्भे से उत्पन्न होना पडा। उसका वह लम्ब तडंगा शरीर मेरे ही कणो में मिल गया।

वृत्रासुर ने अपनी विशाल काया से तीनो लोको को ढक लिया था। इन्द्र को भी उसके वाहन ऐरावत के साथ निगल गया था, देवता उसके नाम से ही थर थर कॉपते थे, वह भी समर में सदा के लिये सो गया। इन्द्र के हाथा मारा गया। उसका विशाल शरीर अब दीखता भी नहीं। मेरे शरीर मे ही वह तदाकार हो गया।

रावण ने सभी लोकों को अपने बल प्रभाव से रुला दिया था। इसी लिये सब उसे रावण कहते थे। देवता उसके यहॉ पानी भरते थे। लोकपाल उसके द्वारपालक का काम करते थे। कोई राजा उससे लडने का साहस नहीं करता था। वह दश शीश बीस भुजा वाला जगत् प्रतापी राजा राम के हाथो मृत्यु को प्राप्त हो गया। राम के सम्बन्ध से जगत मे आज उसके गीत गाये जाते हैं, किंतु दश सिर वाला उसका शरीर काल के उदर में समा गया।

नमुचि को वर प्राप्त था। उसे अभिमान था मैं मर ही नहीं सकता। वह समुद्र के फेन से ही मर गया शम्बरा सुर, भौमासुर, हिरण्याक्ष, तारक तथा अन्यान्य, महिष, बलि, बाण, प्रह्लाद, आदि असुर कुल के बली बात की बात मे भूमि में मिल गये। इनके तेज, बल, वीर्य तथा पुरुषार्थ की केवल कथा ही शेष रह गयी।

कहॉं तक गिनाऊँ, मेरा नाम वसुन्धरा है न जाने कितने नर रत्न मेरे ऊपर हुए और मुझमे ही समा गये। बडे बडे असुर, सुर, मनुष्य तथा अन्यान्य बलो अर्थात हो ऐश्वर्य सम्पन्न हुए वे

अपने को सर्वज्ञ समझते थे, बड़े शूरवीर, विश्वविजयी अपराजित तथा अनुपम थे, जिनकी अव्याहत गति थी। जिनका रथ पहाड़, वन, समुद्र तथा आकाश में समान रूप से सर्वत्र जा सकता था जो मुझमें अत्यन्त ममता रखते थे। जो विश्व विजयी कहाते थे। जो नित्य नये नये मनोरथ किया करते थे। किंतु हाय! कराल काल ने उनके समस्त मनोरथों पर पानी फेर दिया। अपनी समस्त कामनाओं की गठरी के भार को लादे हुए ही वे चल बसे। अब उन प्रतापी राजाओं के केवल कथन मात्र को नाम ही शेष रह गये हैं।"

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! मनुष्य जितनी भी चिन्ता करता है इस शरीर के ही सम्बन्ध से करता है। आत्मा सुख, दुःख से रहित अखण्ड, एक रस परिपूर्ण और स्वजाति विजाति भेदभावों से शून्य है। उसके लिये न किसी वस्तु का अभाव है न उसे कुछ प्राप्त ही करना है। शरीर के ही सम्बन्ध से प्राणी अभिमान करता है—मैं अमुकवर्ण का हूँ, मेरा कुल इतना विशुद्ध है, मैं अमुक आश्रम का हूँ, मैं विद्वान् हूँ, सम्पन्न हूँ, ईश्वर हूँ, भोगी हूँ, सुखी हूँ, शासक हूँ, मेरी आज्ञा को कौन टाल सकता है। मेरे सम्मुख कौन बोल सकता है, मैं विद्वान् हूँ शास्त्रज्ञ हूँ, हूँ, सदा समर विजयी हूँ। एकमात्र मैं ही इस अखिल भूमण्डल का अधिपति हूँ।" ये सब अभिमानपूर्ण वचन इस देह से और इस देह के सम्बन्ध की वस्तु के अभिमान से ही निकलते हैं। कितने लोग इस भूमि पर सुवर्ण चाँदी तथा पत्थर के भवन बना गये। जब वे भवन बनाने वाले ही न बचे तो फिर भवन क्या बचेंगे। जिस भूमि पर असंख्यों बार भवन बन चुके हैं, उस पर एक भवन बनाकर लड़ता है, यहाँ से मैं मोरी न निकालने दूँगा यह मेरी भूमि है। राजा कहते हैं—"इस स्थान में मैं खाई न खोदने दूँगा, यह मेरी सीमा की भूमि है। इन बातों को

भूमि ठठाकर मार कर हँसती है और भीतर ही भीतर गुन गुन करके गाती है—

वसुधा भूपनि कूँ समुझावै।
अरे, व्यरथ क्यों कटत मरत हो, हाथ कछू नहि आवै ॥१॥ वसुधा०
कितने भये होयँगे अब हैं, माइ कौन ले जावै।
विजय करत रथ हय गज लैकें, को विजयी कहलावै ॥२॥ वसुधा०
चार दिवस अभिमान बढ़ायो, काल बली पुनि आवै।
मैं ज्यों की त्यों ई रहि जाऊँ, तनु तजि भूपति जावै ॥३॥ वसुधा०
पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुप नृप, को इनका पद पावै।
सगर, राम, गय, नल, ययाति, रघु, केवल अब सुधि आवै ॥४॥व०
जब इन सबकी नहीं भई मैं, तो क्यों तू ललचावै।
मूरख मोमें ममता तजि कें, क्यों हरि पद नहिं ध्यावै ॥५॥ वसुधा०

इस वसुधा के गीत को जो सुन लेता है, वह तो मोह ममता को छोड़कर मुक्त बन जाता है, जो इस गीत को नहीं सुनता वही बारबार जन्मता है बारबार मरता है और इसी प्रकार चौरासी के चक्कर मे घूमता रहता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब कोई राजा सैन्य सजाकर विजय के लिये निकलता है, तब वसुधा इसी प्रकार उसे देखकर हँसती हुई ऐसे गीतों को गाया करती है, किन्तु राज्य के मद में अन्धे और बहरे बने वे भूपति वसुधा के इस गीत को सुनते नहीं परस्पर में वैर भाव बढाते हैं और काल के कवल हो जाते हैं। यह मैंने वसुधागीत आप को सुनाया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?"

शौनक जी ने कहा—सूतजी! आपने तो यह सब गुड गोबर कर दिया। महाभाग! बडे बडे प्रतापी राजाओं के चरित सुना कर पीछे सबको आपने काल का खिलौना बना दिया इस पर तो हमें एक कथा याद आ गयी।

सूतजी बोले—"हाँ महाराज! अब तक तो मैं ही कथा सुनाता था, अब आप भी एक कथा सुना दीजिये। कौन सी कथा याद आ गयी।

शौनक जी ने कहा—"महाराज! एक व्यापारी था व्यापारी। उसकी एक बड़ी ही प्यारी दुलारी सुकुमारी पुत्री थी। कमल के फूल के समान उसके सुन्दर अंग थे। जब वह चलती तो ऐसी लगती मानों हंस की पुत्री चल रही है, जब वह अपनी तुतली बानी से बोलती तो ऐसी लगती मानों कमनीय कंठ से वसंत में कोकिल कूज रही है। उसी बड़ी बड़ी आँखें नीलकमल के समान सदा प्रफुल्लित रहती। वह अपने पिता की इकलौती पुत्री थी। माता-पिता ने अपनी समस्त मोह ममता उसी पर उड़ेल दी थी। माता पिता भाँति भाँति के वस्त्राभूषण पहिना पहिना कर उसे सजाया करते थे और मन ही मन सिहाया करते थे। उसे तनिक भी कष्ट हो जाता तो घर भर में व्यग्रता छा जाती। चिकित्सक के ऊपर चिकित्सक आते। इस प्रकार वह अत्यन्त प्यार दुलार के भार को वहन करती हुई शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की किरणों की भाँति बढ़ने लगी। बढ़ते बढ़ते अब वह विवाह के योग्य हो गयी। वह व्यापारी चाहता था कोई ऐसा लड़का हो जो कुलीन भी हो और साथ ही निर्धन भी हो, जिसके साथ विवाह करके मैं उसे घर जमाई रख सकूँ। मेरे यही तो एक संतान है। यही मेरी पुत्री है यही पुत्र है। इधर उधर बहुत से आदमी दौड़ाये गये। बहुत खोज के अनन्तर एक लड़का मिला। उसके पितामह लक्षाधीश थे, बड़ा व्यापार था, समय के फेर से व्यापार में घाटा आ गया वे निर्धन हो गये। जिस किसी प्रकार अपना निर्वाह करते थे। लड़का देखने में सुन्दर था, कुलीन था और साथ ही निर्धन भी। लड़की वाले व्यापारी ने बड़ी प्रसन्नता से उसके साथ लड़की का विवाह कर दिया और घर जमाई रख लिया।

निर्धन का लडका एक साथ ही इतना धन इतनी सुन्दरी वहू पाकर अभिमान मे भर गया, उसका आचरण अच्छा नहीं रहा। लड़की तो अपने माँ बाप की लडैती ही थी। वह उसे अपना भृत्य समझती और उसका कुछ भी आदर नहीं करती। घर जमाई की ऐसी दुर्दशा होती ही है। वह तो स्त्री का एक प्रकार से क्रीतदास ही है। फिर भी ससुर उसका इसलिये आदर करते हैं, कि हमारी पुत्रीको कष्ट न हो। उन्हें जामाता के कष्ट की चिन्ता नहीं रहती. पुत्री को सुखी रखना ही उनका परम लक्ष्य रहता है।

एक दिन किसी बात पर कहा सुनी हो गयी। लडका कहीं चला गया। कई दिनों तक खोज की। लडकी तो स्वाधीन थी, उसे तो पति की चिन्ता नहीं थी, किन्तु उसके माता पिता व्यग्र थे। बहुत खोज की लडका नहीं मिला। कुछ दिनो के पश्चात् लडका आया। वह बहुमूल्य वस्त्र भूषणों से सुसज्जित था। सास ससुर ने उसका आदर किया और स्नेह से उससे पूछने लगे— "बेटा! तुम कहाँ चले गये थे।"

उसने कहा—'पिता जी! ऐसे ही इधर उधर घूमने चला गया था।

ससुर ने पूछा—'इतने दिनो में क्या क्या कष्ट पड़े। क्या क्या अनुभव हुए सब अपनी बातें सुनाओ।"

धनिक जामाता फिर घर लौट आया है यह सुनकर बहुत से लोग एकत्रित हो गये। वह लड़की भी अपने पति के विषय में

जानने को उत्सुक थी, अतः किवाड़ की आड़ में बैठकर उसकी बात को सुन रही थी। सब को सुनते हुए उस लड़के ने कहना आरम्भ कर दिया।

पिता जी! मैं यहाँ से चला गया और भी मेरे साथी हम सब चलते चलते बहुत दिनों में राजधानी में पहुँचे। एक सुन्दर सजा हुआ उपवन देखा। उसी में जाकर मैं तो सो गया। मुझे पता नहीं कब तक मैं सोता रहा। वहीं पर एक राजकुमारी आई, वह मेरे रूप पर मुग्ध हो गयी उसने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया। वह अपने पिता की इकलौती पुत्री थी। जिसके साथ वह विवाह करती वही उस नगर का राजा बन जाता मैंने उसका प्रस्ताव स्वीकार किया और राजा ने मेरा राज्या-भिषेक करा दिया मैं राजा बन गया। अब तो सर्वत्र मेरे नाम का जय जयकार होने लगा। सब मेरी सेवा में सदा संलग्न रहते। मैंने अब अपना राज्य बढ़ाने के लिये सेना बढ़ाई। मेरी रानी कहती—"तुम महलों को छोड़कर कहीं मत जाओ। मुझे राज-काज करने जाना ही पड़ता था। इसी समय एक बड़ी दुर्घटना हो गयी। मैं अपनी रानी के संग एक सरोवर के निकट बैठा था, कि इतने में ही एक राक्षस वहाँ आया। वह पर्वत के समान ऊँचा था, बड़ा भयंकर उसका मुख था बड़ी बड़ी तीक्ष्ण दाढ़ें थीं। उँगलियों के नख बड़े पैंने और लम्बे लम्बे थे। उसके सिर के बाल लाल लाल कड़े और भयानक थे। वह अंजन पर्वत के समान काला था वह अपने दाढ़ों से एक सुन्दरी जीवित चबा रहा था स्त्री रो रही थी। वह आकर मेरे सम्मुख खड़ा हो

गया। कुछ बोलाचाला नहीं। उस राक्षस को देखकर मेरी रानी चीख मार कर वहीं गिर पडी और मूर्छित हो गयी।" इतना कह कर लडका चुप हो गया।

सभी लोगों की उत्सुकता बढ़ रही थी, सभी आगे का समाचार जानने को व्यग्र थे। लडकी खिडकी की आड में से सुन रही थी और मन ही मन हँस रही थी लडके ससुर ने व्यग्रता पूर्वक पूछा—"हाँ, तो लल्ला फिर क्या हुआ ?"

लड़के ने कहा—"हुआ क्या पिताजी ! फिर मेरी आँख खुल गयी। न वहाँ रानी थी न राक्षस, मैं अकेला पडा पडा सो रहा था। मेरे साथियों ने रात मे लाकर वस्त्राभूषण दिये उन्हें पहिन कर मैं यहाँ आ गया।"

वह लडका यह कह ही रहा था, कि इतने में ही राज कर्मचारी पॉच सात धूत खेलनेवालों के हाथों में हथकड़ी डाले हुए वहाँ आये और उस लडके को भी पकडकर उसके हाथों में हथकडी पहिनाकर ले गये।

सो, सूतजी आपने भी इतने राजाओ की ऐसी अद्‌भुत अद्‌भुत कथायें सुना कर हमारी उत्सुकता बढ़ा दी। हमने भी प्रश्न के ऊपर प्रश्न करके आपको व्यग्र बना दिया। सबके अन्त में आप कहते हैं, यह सब तो स्वप्न था। राजाओ का अज्ञान था, कि इस पृथिवी को वे मेरी मेरी कहते थे, जब यही बात थी, तो आपने इन सूर्य वंश के और चन्द्रवंश के लाखों राजाओं के व्यर्थ में नाम क्यों गिनाये। क्यों इनकी इतनी लम्बी लम्बी कथायें सुनायीं।"

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और बोले—"महाराज! ये कथायें मैंने आपको निरर्थक नहीं सुनायीं इनके सुनाने का भी कारण है। उस कारण को भी मैं आगे बताऊँगा, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

नृपति विजय कूँ व्यग्र निरखि वसुधा हँसि जावै।
करि करि उन पै व्यङ्ग मरमयुत वचन सुनावै॥
नृपति खिलौना काल मोह का जे जीतिहैं।
बीते अगनित नृपति कालि ये हू बीतिहैं॥
कहो कहा तिन ने लह्यो, कीयो जिनने मोह वश।
मरि मरि ते नृप नसि गये, मैं तब जैसी अबहुँ तस॥

राजाओं की कथायें वाणी का विलास मात्र हैं

(१३४८)

कथा इमास्ते कथिता महीयसाम्,
वितात्य लोकेषु यशः परेयुषाम् ।
विज्ञान वैराग्य विवक्षया विभो,
वचोविभूतीर्नतु पारमार्थ्यम् ॥*
(श्री भा० १२ स्क० ३ अ० १४ श्लो०)

छप्पय

ऐसे भूपति भये नयी जो सृष्टि बनावें।
सूरज पथ कूँ रोकि रैनि के तमहिँ भगावें॥
रथतैं करें समुद्र भूमि पै बान चलावें।
सप्त द्वीप नव खण्ड विजय करि भूप कहावें॥
किन्तु काल के गाल में, तेऊ फँसि के नसि गये।
करि जगतैं वैराग्य हरि, गये शरन ते तरि गये॥

समस्त शास्त्रों का सार इतना ही है कि जगत् के सब पदार्थ अशाश्वत नाशवान् तथा परिणाम में दुःखद हैं, एकमात्र श्री हरि

*श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! मैंने आप से उन महापुरुषों की कथायें कही हैं जो इस लोक में अपनी कीर्ति का विस्तार करके चल

ही सुख स्वरूप शाश्वत और अविनाशी हैं।' इसी बात का समस्त शास्त्रों में व्याख्यान किया गया है। नाना भाँति से दृष्टान्त देकर इसी तत्व को समझाया गया है। किन्तु व्याख्यान न करके सहसा इसी बात को किसी से कह दें, तो उसकी बुद्धि में यह बात न बैठेगी। इसी लिये शास्त्र घुमा फिरा कर इधर उधर की बहुत सी बातें बताकर तब संकेत से इस सत्य को कहता है। किसी को घृत चाहिये। और घृत गौ से प्राप्त हो सकेगा, तो प्रथम उसके लिये गौ की आवश्यकता है, गौ भी बाँझ न हो। ब्याने वाली हो, वह भी दूध देती हो, फिर उसे घास दाना दिया जायगा। इतने पर भी वह घृत न देगी। उसे बछड़ा छोड़कर पुहनाया जायगा। फिर भी उसके स्तनों से घृत न निकलेगा, दूध ही निकलेगा, किन्तु उस दूध में घृत छिपा है। फिर उसे गरम करना होगा, गरम कर के जामन देकर जमाना होगा दही बनाना होगा। अब दूध से दही बन गया, फिर दही का मन्थन करना होगा, नवनीत को निकालना होगा। इतने पर भी घृत नहीं निकला। नवनीत को अग्नि पर तपाना होगा। फिर छानना होगा, मैल को पृथक् करने से घृत निकलेगा। घृत निकाला तो गौ के दूध से ही, किन्तु निकालने में बहुत सी क्रियायें करनी पड़ीं। इसी प्रकार समस्त शास्त्रों का सार तो यही है किन्तु वह सार सरलता से प्राप्त नहीं होता उसके लिये शास्त्रों का मन्थन करना पड़ता है। स्वयं अनुभूति प्राप्त करनी होती है। बिना अनुभव किये कोई उसका स्वाद जान ही नहीं सकता।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! मैं ने इन इतने राजाओं की कथायें आपको इसलिये नहीं सुनायीं कि आप इन सबके जन्म

बसे हैं, ये कथायें केवल वाणी का विलास मात्र हैं, मैंने केवल ज्ञान और वैराग्य का वर्णन करने की इच्छा से ही ये कही हैं। इसे परमार्थ न समझें।"

के, गद्दी पर बैठने के युद्ध जीतने के अश्वमेघ यज्ञ करने के सम्वत सरों को रट लें। इन इतने राजाओं की कथायें मैं ने ज्ञान वैराग्य का वर्णन करने की इच्छा से कहीं। बिना वैराग्य के ज्ञान नहीं। होता और बिना राग के वैराग्य की प्राप्ति नहीं। जीव का धन में स्त्री में और भूमि मे राग स्वाभाविक होता है। सभी चाहते हैं मेरे पास अधिक से अधिक धन हो, सभी चाहते हैं मुझे सुन्दर से सुन्दर सुशील से सुशील पत्नी मिले। इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री चाहती है मुझे गुणी से गुणी ऐश्वर्यशाली से ऐश्वर्यशाली पति मिले। सभी चाहते हैं अधिक से अधिक भूमि पर हमारा अधिकार हो। महाराज ! गृहस्थियो की बात छोड दीजिये। जब त्यागी विरागी सन्यासी लोग भी मठ बनाते हैं, तो उनकी भी इच्छा हो जाती है, हम अपने पडोसी की जितनी भी हो सके भूमि पर अधिकार जमा लें। एक एक अंगुल भूमि के लिये लडाइयॉ हो जाती हैं राजद्वार मे अभियोग चलते हैं। जिनके पास अधिक धन ऐश्वर्य होता है जिनकी स्त्रियॉ अधिक सुन्दरी और सख्या में अधिक होती हैं तथा जो अधिक भूमि के अधिपति होते हैं वे राजा कहलाते हैं। इसी लिये मनुष्यों मे राजा का भगवान् का अंश माना गया है। स्त्रियों मे जो अधिक सुन्दरी होती है, उसे कहते हैं—"यह तो रानी सी लगती है। प्यार से सभी अपनी लडकियों को कहते हैं—"बडी रानी बेटी है।" अमुक काम को कर लेगी तो तू रानी बेटी हो जायगी।" इसी प्रकार लडकों से कहते हैं—"तू काजर लगवा लेगा, तो राजा बेटा हो जायगा।" अर्थात् राजा रानी होना मनुष्यो में यह बडे गौरव को बात मानी जाती है। इसीलिये मैंने सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राजाओं की कथायें सुनायीं कि इस वंश में कितने कितने प्रभावशाली राजा हुए। जिनके रथ की लीक से सात समुद्र हो गये। जिन्होंने इसी शरीर से स्वर्ग तक पर राज्य किया, जिनके सम्मुख इन्द्र भी

आकर हाथ जोड़कर खड़े रहते थे। जिनके चढ़ने को इन्द्र को भी बैल बनना पड़ा। जिनके यज्ञों में देवता भृत्यों के समान काम करते थे। इतने प्रतापी राजा भी अन्त में सर्वस्व छोड़कर चले गये। मेरा तात्पर्य इन राजाओं को कथा सुनाने से संसार से वैराग्य कराने में था। धन ऐश्वर्य तथा भूमि विजय की कथा सुनाना यह तो वाणी का विलास मात्र है। श्रुतमधुर राग है। लोगों की इन विषयों में अधिक रुचि होती है। सूखी ज्ञान वैराग्य की कथा कहो तो निद्रा आने लगती है। चित्त इधर उधर भटकने लगता है। जहाँ कोई कथा कही कि कान खड़े हो जाते हैं। कहने वाला आरम्भ करता है— 'एक राजा था, उसकी एक रानी थी। रानी क्या थी सुन्दरता की साकार मूर्ति ही थी। उसके चरण कमल पंखुड़ियों से भी अधिक कोमल थे। उसका वर्ण तपाये हुये सुवर्ण से भी निखरा हुआ था उसका मुख चन्द्रमा की आभा को भी तिरस्कृत करने वाला था। सहस्र दासियाँ सदा उसकी सेवा में संलग्न रहतीं। कोमल फूलों की शैया पर वह शयन करती। उसके सोने से सुमन मुरझाते नहीं थे।"

जहाँ यह वर्णन सुना कि सब ओर से चित्त वृत्ति हट कर कथा में ही लग जाती है। किसी भी श्रेणी का पुरुष क्यों न हो धन ऐश्वर्य भूमि और स्त्रियों के सम्बन्ध की कथाओं को बड़े मनो योग से सुनेगा। राजाओं की कथाओं में और होता ही क्या है। सब कथाओं में ये ही बातें होती हैं। राजा के शील स्वभाव का वर्णन उसकी रानी और राजकुमारी के सौंदर्य का वर्णन, उसके ओज, तेज प्रभाव, ऐश्वर्य, दिग्विजय, युद्ध, यज्ञ आदि का वर्णन अन्त में उसकी विपत्ति का वर्णन और मृत्यु का वर्णन सभी राजाओं की कथाओं में ये ही बातें तो कही जाती हैं। उस स्वयंवर में गये उस कुमारी पर आसक्त हुए। उसने या तो जयमाला डाल दी, या ये उसे रथ में बिठाकर भाग गये। अन्त में इतने

सब विभव को यहीं छोडकर मर गये। कथा का सार इसी मे है कि कितना भी समह करो, कितनी भी भोग सामग्री जुटाओ इनसे तृप्ति न होगी। भोगो के भोगने से भोगेच्छा और बढती ही जायगी और अन्त में मन यहीं रह जायगा। परलोक मे कुछ साथ जायगा भी तो दान धर्म जायगा। यदि परलोक में दान धर्म ही जायगा तो धन पाकर यथेष्ट दान धर्म क्यों न करे जिस से परलोक में सुख मिले।

फिर देखते हैं परलोक में मिलने वाला स्वर्गादि का सुख भी क्षयिष्णु है। पुण्य क्षीण होने पर फिर स्वर्ग से मर्त्य लोक मे ढकेल दिये जाते हैं। तब वह भी यथार्थ सुख नहीं ठहरता यथार्थ सुख तो वही है जिससे संसार का आवागमन सदा के लिये छूट जाय। यह जन्म मरण का चक्र सदा के लिये समाप्त हो जाय। क्योंकि राजा होकर किसी ने यह नहीं कहा कि हमे इन भोगो से पूर्ण शान्ति है, सभी को अशान्त पाया। फूल सी सुकुमारी राजकुमारिया को फूल की शैया पर जब तडपत हुए देखते हैं, तो ससार से वैराग्य होता है। दाद में खुजली होती है। इच्छा होती है इसे खुजालें तो सुख होगा। नख से उसे खुजाते हैं खुजाते समय क्षण भर को उसमे सुख सा प्रतीत होता है, उसमे से पानी निकलने लगता है, फिर इतना चित्त खिन्न होता है, ऐसी जलन होती है, कि नख लगाने से भी कष्ट होता है। अब बताये दाद को खुजाने में सुख के स्थान मे दुःख ही अधिक हुआ। यह जानते हुए भी दूसर दिन फिर खुजलाहट दौडती है तो फिर उसे नख स खुजाते हैं फिर पानी निकलता है फिर दाह होती है। यदि उसे खुजाया न जाय उसकी पीडा को कडा हृदय करके सह लिया जाय और उसे जलाने को औषधि लगायी जाय, तो दाद सदा के लिये मिट जायगी। नित्य खुजाने और पानी निकालने का झंझट ही दूर हो जाय। यही दशा विषयों के उपभोग की है। इन्द्रियाँ

जब सम्मुख विषय के उपभोग की सामग्री को देखती हैं, तो उन्हें भोगने की उनसे सुख प्राप्त करने की इच्छा होती है। उनका उपभोग करता है, पीछे पछताता है। यदि उनसे मन को हटा ले वैराग्य धारण करले तो ज्ञान को प्राप्ति हो। जबतक संसारी विषयों में राग है तब तक ज्ञान प्राप्त होना असम्भव है। ज्ञान की प्राप्ति तभी होगी जब संसारी विषयों से पूर्ण वैराग्य हो।। वैराग्य कोई गुड़ का पुआ तो है नहीं कि हाथ से उठाया मुँह में रखा गप्प कर गये अनेक जन्मों की वासनाओं से प्रारब्ध वश विषयों की ओर चित्त स्वतः जाता है। उसे बार बार उनकी ओर से हटावे, वैराग्य धारण करे। उनके आदि करण पर विचारे। ये सब आगमा पायी हैं ऐसा निरन्तर अभ्यास करे। इस प्रकार अभ्यास वैराग्य के द्वारा मनका निरोध करे। प्राचीन राजाओं की कथाओं से सहायता लेता सोचे—"देखो राजा भरत कैसे चक्रवर्ती सम्राट थे। कितनी सुन्दरी सुन्दरी उनकी रानियाँ थीं, कितना अपार ऐश्वर्य उनके यहाँ था। यदि इनमें ही सुख होता तो वे रानियों को मृतक शरीर समझ कर राज्य सुख को तुच्छ समझकर अकेले वन में जाकर क्यों रहते। क्यों केवल कंद मूल और कड़वे कसैले फलों पर ही निर्वाह करते। भाग्यवश उनका एक मृग के बच्चे से मोह हो गया। उस मोह के कारण उन्हें मृग होना पड़ा। पुरञ्जन का पुरञ्जनी में मन फँस गया अन्त में उसे स्त्री होना पड़ा। जिसमें मन फँस जायगा वही होना पड़ेगा। चौरासी लक्ष योनियों में ऐसे ही घूमना पड़ेगा। इसलिये ऐसा उपाय क्यों न किया जाय जिससे यह जन्म मरण का चक्र सदा के लिये छूट जाय। एक मनुष्य देह ही ऐसी है कि इस चौरासी के चक्कर से छुड़ा सकती है। मनुष्य शरीर पाकर भी विषयों में फँसा रहा तो फिर चौरासी का चक्र सम्मुख रखा ही है। इस विषय में बड़े लोग एक दृष्टान्त दिया करते हैं।

एक बड़ा भारी घर है। उसमें निकलने का एक ही द्वार है। उसमें कोई अन्धा घूम रहा है। किसी विज्ञ पुरुष ने उससे कह दिया है हाथ से टोहता हुआ तू इसके चारों ओर घूम। जहाँ दरवाजा दिखायी दे वहीं से निकल जाना। वह हाथ से टोहता हुआ आगे बढ़ता है। ज्योंही द्वार के समीप आता है उसके सिर में खुजली होने लगती है। सिर को खुजाते खुजाते आगे बढ़ता है और निकल जाता है फिर टोहते टोहते उसे पूरे भवन का चक्कर लगाना पड़ता है। द्वार के समीप आकर फिर हाथ मे खुजली उठती है, फिर दरवाजा निकल जाता है, फिर पूरा चक्कर लगाना पड़ता है। इसी प्रकार वह जब द्वार पर आता है तभी चूक जाता है। अब के उसने निश्चय कर लिया जब खुजली होगी उसे सहन कर लूँगा किन्त हाथ को न छोड़ूंगा। जहाँ उसने यह निश्चय किया वहीं वह उस कारावास से बाहर निकल जाता है।

यह तो हुआ दृष्टान्त अब इसका दार्ष्टान्त भी सुनिये। यह संसार ही बड़ा भारी भवन है। मनुष्य योनि ही इससे निकलने का एकमात्र द्वार है। अन्धा पुरुष ही जीव है। आचार्य रूप गुरु ही इसे शिक्षा देने वाला है। विषयों के भोग की इच्छा ही खुजली है। मनुष्य देह में आकर भी जो विषयों में फँसा रहता है मुक्ति के लिये प्रयत्न नहीं करता उसे ही बार बार चौरासी के चक्र में घूमना पड़ता है। जो इन विषयो की खुजली को कड़ा हृदय करके सह लेता है, वह इस संसार रूप कारावास से सदा के लिये निकल जाता है। इसलिये मुनियो! राजाओं की कथायें ये तो वाणी का विलास मात्र है लोगों को इस ओर आकर्षित करने को कही गयीं हैं ये परमार्थ नहीं है।

इस पर शौनक जी ने कहा—"तो सूतजी! इसका अर्थ तो यह हुआ कि न कई मनु हुए न उत्तानपाद प्रियव्रत न कोई पृथु

हुए न सगर मान्धाता। ये सब कपोल कल्पना मात्र हैं। ये सब उपन्यास के कल्पित पात्र हैं।"

यह सुनकर सूतजी ठटाका मारकर हँस पड़े और हँसते हँसते बोले—"महाराज! आप भी कैसा बच्चों का सा प्रश्न कर रहे हैं। महाभाग! यह सम्पूर्ण संसार ही कल्पित है। कल्पना के अतिरिक्त संसार में और है ही क्या? अच्छा बताइये संसार के जितने पदार्थ हैं इनमें यथार्थ कौन सी वस्तु है। खेल दिखाने वाला क्षण भर में आम की गुठली से पेड़ बना देता है, फल लगा देता है पके पके फल सब को खिला देता है, अन्त में उस पेड़ को अन्तर्धान कर देता है। जो चाहता है तुरन्त मँगा देता है। रुपयों की ढेरी कल्पित ही तो है। उस खेल दिखाने वाले का खेल कुछ क्षणों रहता है यह संसार का खेल उससे कुछ अधिक क्षणों रहता है। है सब खेल ही। महाराज! सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारे, द्वीप, समुद्र, नदी, नद, स्वर्ग, नरक ये सभी कल्पना हैं। ये सब निस्सार हैं इनमें कुछ भी सार नहीं।"

भौंचक्के से होकर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! आपने तो सब पर पानी फेर दिया। जब संसार में सभी निस्सार है, तो फिर तुमने इतनी देर बक बक क्यों की। हमारा भी समय नष्ट किया अपनी भी वाणी को कष्ट दिया। स्वर्गलोक, तपलोक, सत्यलोक चौदह भुवन सभी कल्पित हैं सभी निस्सार हैं, सभी वाणी के विलास हैं, तो फिर कुछ सार भी है या सभी निस्सार है।"

सूतजी ने कहा—"महाराज मैंने जो कहा है उसमें एक ही बात सार है।"

शौनक जी ने पूछा "वह कौन सी बात सार है? सूतजी कृपया उसी को हमें बताइये।"

सूतजी बोले—"महाराज! इस सम्पूर्ण जगत् में श्री उत्तम श्लोक भगवान् के जिस गुणानुवाद का निरन्तर गान किया जाता है

है वही सार है, वही यथार्थ तत्त्व है उसी से समस्त सांसारिक अमङ्गलों का नाश हो सकता है। भगवान की भक्ति ही जीवमात्र का चरम लक्ष्य है जिसे भक्ति प्राप्त करने की इच्छा हो उसे नित्य नियम से भागवत चरितों का पाठ करना चाहिये। उन्हीं को सुनना चाहिये उन्हीं का गान करना चाहिये।"

शौनक जी ने कहा—"जब सूतजी! भगवान् की लीला कथा ही सार है, तो आपने वाणी विलास के लिये इतने राजाओं की व्यर्थ कथायें क्यों कह डाली केवल हमें भगवान् की ही कथा सुनाते ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज बिना भक्तों की कथा के भगवान् की कथा रखी किसमें जाती। आप कहे कि हमें दूध दही ला दे दो पात्र मत दो बिना पात्र के दूध दही देंगे किसमें ? आप कहो कि हमें तो चावल उगाने हैं चावल ही बोओ उसके ऊपर के छिलके को मत बोओ, बिना छिलके के चावल उत्पन्न कैसे होगा। तुम कहो हमें तो बादाम अखरोट, मूँगफली की मिंगी चाहिये पेड़पर से उसके छिलकों को मत तोड़ो। बिना छिलकों के सहित तोड़े उनकी मिंगी निकलेगी कैसे। आप कहो गेहूँ जौ के ऊपर के तीखुरों को मत काटो केवल गेहूँ जौ के दाने काट लाओ, तो बिना पूरा बाल को काटे दाने कैसे निकलेंगे। तुम कहो हमें तो तिल के पेड़ में से तेल दे दो तिल को मत लाओ हमें खली की आवश्यकता नहीं किन्तु बिना तिल लाये बिना उसकी खली बनाये तेल निकलेगा कैसे ? तुम कहो हमें तो घी में से मलाई निकालनी है दूध न दुहकर मलाई दुह लो, तो बिना दूध निकाले मलाई निकलेगी कैसे। इसी प्रकार तुम कहो कि बिना सूर्य, चन्द्र, मनु, रघु, अज, शूर वसुदेव, नंद यशोदा आदि की कथा कहे ही हमें राम कृष्ण की कथा सुना दो तो यह असम्भव है। जैसे दूध में से

सार निकाल कर प्रेम से दूध को दूसरों के लिये छोड़ देते हैं मलाई को मीठा मिलाकर स्वयं पा लेते हैं उसी प्रकार इन सब कथाओं में से साररूप भगवान् के चरित्रों का रसास्वादन विज्ञजन करते हैं अन्य रसीली रँगीली कथायें साधारण लोगों को छोड़ देते हैं। कलियुग में अधर्म अन्याय अत्याचार आदि दोष अत्यधिक बढ़ गये हैं, उनके बढ़ जाने से लोगों की भगवान् के गुण श्रवण में रुचि नहीं होती। साधुओं के यहाँ पहिले निरन्तर भगवान् की ही चर्चा होती रहती थी। अब कलियुग के प्रभाव से वहाँ भी कलह, कपट, दम्भ प्रपञ्च और नाना प्रकार की लौकिक बातें होती रहती हैं, कलियुग ने सर्वत्र अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! कलियुग के दोषों को दूर करने का कोई उपाय भी है। जब यह कलियुग साधु पुरुषों के ऊपर भी हाथ फेर देता है, तो अन्य साधारण लोगों की तो बात ही क्या है।"

इस पर सूतजी ने कहा—"महाराज ! विष्णुरात परीक्षित् ने भी वसुधागीत सुनकर भगवान् शुक से कलियुग के बढ़े हुए दोषों को दूर करने का उपाय पूछा था और साथ ही कै युग हैं, किस युग के कौन कौन धर्म हैं, प्रलय कैसे होती है, स्थिति कितने दिन रहती है। भगवान् विष्णु की काल मूर्ति का स्वरूप क्या है। ये प्रश्न किये थे यद्यपि इन विषयों में से कुछ का वर्णन मैं समय समय पर पीछे कर चुका हूँ, फिर भी इनका संक्षेप में वर्णन करूँगा। इन विषयों में पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाता। यदि इन्हें पुनरुक्ति कहें तो समस्त वेद शास्त्र पुनरुक्तियों से ही भरे पड़े हैं। एकही सृष्टि का वर्णन वेद पुराणों में भिन्न भिन्न रूप से किया गया है। श्रीमद्भागवत में ही सृष्टि का प्रकरण कितनी बार

आया है। इस विषय का अनेक बार वर्णन हो चुका है अतः अत्यन्त ही संक्षेप में मैं इस विषय का कहूँगा।"

छप्पय

पूछें शौनक-सूत ! युक्ति अब सरल बतावें।
जातें कलि के दोष दूरि सबरे है जावें॥
सूत कहें—"युग चारि चारि पद धर्म बताये।
सत्य, दया, तप, दान प्रथम युग सकल सुहाये॥
घटत घटत घटि जायँ गुन, कलि में होवै कलह नित।
काम, क्रोध, मद, लोभ में, सब प्रानिनि को फँसत चित॥

—:o:—

कलियुग के दोष और उनसे बचने के उपाय

(१३४९)

पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ३ अ० ४५ श्लो०)

छप्पय

जहँ देखो तहँ ढोंग विषयमें रत सब प्रानी।
राजा क्रोधी, क्रूर, कुटिल, कामी, अज्ञानी ॥
सती न होवैं नारि कामिनी कुलटा घर घर।
काम वासना हेतु करें साहस अति दुष्कर ॥
पुरुष काम लोलुप अधिक, कुलटा की सेवा करें।
यहाँ दुखी नित शोक तैं, मरिकें नरकनि में परें ॥

यह संसार नाम और रूप की रस्सी से बँधा हुआ है। संसारी नाम और संसारी रूप संसार में अधिकाधिक बाँधते हैं और भगवान् का नाम और भगवान् का रूप संसारी बंधनों को खोलते हैं।

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! मनुष्यों के द्रव्य से होने वाले, देश से होने वाले तथा अन्तःकरण से होने वाले समस्त कलिकृत दोषों को अन्तःकरण में स्थित भगवान् पुरुषोत्तम तुरन्त हरण कर लेते हैं।"

कफ के रोगोंमें यदि कफ बढाने वाली ही वस्तुओं का सेवन करोगे तो रोग अधिकाधिक बढता जायगा। इसके विपरीत पित्त बढाने वाली वस्तुओंको खाओगे, तो रोग घटता जायगा। संसारी नाम रूप की आसक्ति से उत्पन्न हुए दोष भगवान् के नाम रूप से ही मिट सकते हैं। यह संसार दुःख का घर है इसमें एक मात्र आश्रय भगवान् का ही है। प्रकृति पतन मुखी है इसीलिये शुद्ध सतयुग के अनन्तर बिना प्रयत्न के स्वाभाविक घोर कलि-युग आ जाता है। बिना सिखाये सबकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अधर्म में ही जाती है। बड़े बडे प्रभावशाली लोग धर्म को ढोंग और पतन का कारण मानने लगते हैं और पूरी शक्ति लगाकर उसे नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। युग के प्रभाव से उनकी ऐसी मति मारी जाती है, कि उसी को वह उन्नति का उपाय समझते हैं। इस घोर युग मे भी जो भगवन्नाम का आश्रय लेगा, निरन्तर भगवान् के नामों का उच्चारण करता रहेगा, वह काल कलि के दोषों से बच जायगा।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! समय बड़ा बली होता है, यह मनुष्य का मिथ्याभिमान है, कि मैंने यह किया मैंने वह किया। वास्तव में सब समय करा लेता है। जो विश्वामित्र नयी सृष्टि बनाने में समर्थ थे, जिन्होंने नये सप्तर्षि बना दिये, नये देवता बना दिये। नया इन्द्र बनाने को तैयार हो गये वे ही भूख के कारण इतने व्याकुल हो गये कि चाण्डाल के घर से कुत्ते के मांस की चोरी की, समय की महिमा है। जिस अर्जुन के गांडीव धनुष ने इतना भारी महाभारत समर जीत लिया। भीष्म, द्रोण तथा कर्ण जैसे विश्वविजयी वीरों को बात की बात मे यमपुर पहुँचा दिया, वही गांडीव भगवान् के स्वधाम पधारने के पश्चात् व्यर्थ बन गया। भीलों की लाठियों की बराबरी भी न कर सका। सब बात समय के ऊपर निर्भर है।

जब सत्वगुण की वृद्धि होती है उस समय सत्ययुग वर्तता है। तब धर्म अपने सत्य, दया, तप और दान इन चारों पैरों से युक्त रहता है। उस समय के लोग स्वाभाविक सन्तोषी होते हैं उनको संग्रह करने की रुचि ही नहीं होती समय पर स्वतः जो भी प्राप्त हो गया उसी में मग्न रहते हैं। उनका हृदय करुणा से ओत-प्रोत रहता है। वे दूसरों के दुखों को देख नहीं सकते। परोपकार करने में उन्हें आन्तरिक प्रसन्नता होती है। वे सब प्राणियों के प्रति सौहार्द्र भाव रखते हैं। जो सब प्राणियों के प्रति सौहार्द्र रखता है उसे शान्ति स्वतः ही प्राप्त हो जाती है अतः उस समय के लोग चंचल प्रकृति के न होकर सबके सब शान्त होते थे। उनकी इन्द्रियाँ अपने वश में होती थीं। आँख, कान, नाक, रसना तथा त्वचा कोई अनुचित विषयों में प्रवृत्त नहीं होती थी। मन व्यर्थकी बातें नहीं विचारता था। वे लोग सुख दुख, शान्ति उष्ण, मान अपमान, लाभ, अलाभ, शत्रु, मित्र तथा अन्य सभी द्वन्दों में समभाव रखने वाले होते थे। द्वन्दों को सहन करने की उनमें स्वाभाविक शक्ति होती थी। वे अपने आप में ही निमग्न रहते। उन्हें मनोरंजन के बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं रहती थी। वे लोग सब मे समभाव रखते सब के सब समदर्शी होते। प्रायः सब के सब आत्माभ्यास में निरत रहते।

संसार तो द्वन्द्व से ही बना है। धर्म के साथ अधर्म भी लगा है। सत्य का भाई असत्य भी है। दया की एक भगिनी हिंसा भी है। तप का एक क्रूर भाई असन्तोष भी है और दान का भाई लोभ भी है। जब ये सत्य, दया, तप और दान सत्ययुग में पूर्ण राज्य करने लगे तब इनके भाइयों ने अपना भी स्वत्व सिद्ध किया। यह कहाँ का न्याय है कि सब अधिकारों का तुम ही उपभोग करो। सब पर तुम्हारा ही अधिकार हो। हम भी तो अधर्म के पुत्र हैं। हम भी तो तुम्हारे भ्रातृव्य हैं। पितृव्य पुत्र का भी तो

सम्पत्ति में भाग होता है। भगवान के धर्म और अधर्म दोनों ही पुत्र हैं। धर्म बड़ा है अधर्म छोटा है। इसलिये सत्ययुग में धर्म के चारों पुत्रों ने अधिकार जमा लिया। अधर्म के तरतफ कोई सन्तान हुई नहीं थी जब अधर्म के भी सन्तानें हुईं और वे बडी हुईं तो उन्होंने भी अपना भाग बटाना चाहा, किन्तु जिस वस्तु पर जिसका प्रथम से अधिकार हो जाता है उसमे से भाग बॅटाना कठिन हो जाता है, किन्तु यदि कोइ लगा रहता है, तो किसी न किसी दिन अपना भाग लेकर ही छोडता। सत्ययुग में तो अधर्म की सन्तानों की दाल गली नहीं, किन्तु हॉ त्रेता युग मे उन्होंने चार भागों मे से एक भाग बॅटा लिया। अब धर्म सोलह आने न रहकर बारह आने रह गया। इसी प्रकार दया, तप और दान मे से भी चौथाई चौथाई भाग हिंसा असन्तोष और लोभ ने ले लिया। इतने पर भी ये अधर्म के पुत्र सन्तुष्ट होकर चुप नहीं बैठे। ये कहते ही रहे हम आधे के स्वामी हैं। हमको आधा भाग मिलना चाहिये।

कहावत है लगा बुरा होता है और जिसके हाथ मे उँगली आ जाती है उसे पहुँचा पकडने मे देर नहीं लगती। भारत मे विधर्मी गुरुड लाग व्यापार करने आये थे। उन्होंन अपनी रक्षा के लिय राजा से कोठियाँ बनाने की आज्ञा चाही वह मिल गया, तो वे सेना रखने लगे। देश क एक छोटे भाग पर उन्होंने छल से अधिकार भी कर लिया। जब पैर जम गय ता शनैः शनैः सम्पूर्ण देश के वे स्वामी बन गये। यही दशा अधर्म की सन्तानों की थी। धर्म की सन्तानें कुछ निर्बल भी होती जाती थीं, अतः द्वापर में आकर अधर्म के वंशजों ने सोचा 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः' जब सब जाने का संभावना हो तब बुद्धिमान को चाहिये कि आधे को छोड़ दे। इसलिये सत्य, दया, तप और दान

ये आधे आधे रह गये असत्य हिंसा, असन्तोष और विग्रह आधा अधिकार इनका हो गया।

जिन अधर्म की सन्तानों का सत्ययुग में तनिक भी अधिकार नहीं था और अपने बल पुरुषार्थ से जिन्होंने आधा भाग बँटा लिया, तो उनका साहस बढ़ा। वे बोले—"इतने दिन धर्म की सन्तानों का एकाधिपत्य रहा अब हमारा एकाधिपत्य होना चाहिये। हम किसी से घटिया थोड़े ही हैं ?

सत्ययुग के लोग सन्तोषी, कारुणिक, सुहृद, शान्त, जितेन्द्रिय, सहनशील, आत्मागम, समदर्शी तथा आत्माभ्यास निरत होते थे, उन्हें अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं रहती थी। त्रेता में धर्म का एक एक अंश घटने से लोग कर्म काण्ड प्रधान हो गये। वे यज्ञ याग में हिंसा भी करते थे किन्तु अन्य कार्यों में हिंसा से बचे रहते थे। वे वैदिक हिंसा को हिंसा नहीं मानते थे। व्यवहार में कुछ कुछ लम्पटता का समावेश हो गया था, किन्तु अधिक नहीं। मोक्ष की इच्छा कम हो गयी अब अधिकांश लोग धर्म अर्थ और काम इन त्रिवर्गों का ही सेवन करने लगे। वे लोग वैदिक कर्म-कांड मे कुशल होते थे।

जब अधर्म की सन्तानों ने द्वापर में अपना आधा भाग बाँट लिया तो धर्म के चार के स्थान में दो ही पैर रह गये। दो पाद अधर्म के हो गये। उस समय आधे लोग तो अपने को सुखी रखने लगे और आधे दुखी रहने लगे। तप, सत्य, दया और दान का आधा राज्य नष्ट हो गया उनके आधे भाग पर हिंसा, असत्य असंतोष और द्वेष इन सब ने अधिकार कर लिया। उस समय यश, उदारता, स्वाध्याय और अध्ययन ये ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रधान वर्णों में ही रह गये। वैश्य और शूद्र इन से प्रायः वञ्चित हो रहे। धनाढ्य कुटुम्बी हृष्ट पुष्ट और सम्पन्न क्षत्रिय ही होते और उनपर ब्राह्मणों का भी अधिकार था।

कलियुग में आकर अधर्म की सन्तानो ने तीन भाग पर अपना अधिकार जमा लिया। धर्म की सन्ताने निर्बल पड गयीं। ज्यों ज्यों कलियुग बढ़ता जायगा त्यों त्यों अधर्म का सन्तानें वृद्धि को प्राप्त होती जायेंगी। कलियुग क अन्त में सोलहू आने अधर्म की सन्तानों का राज्य हो जायगा। कलियुगी लाग धम कर्म से हीन होंगे। कलियुग में शूद्र और श्रम जीवी इनका ही प्राबल्य रहेगा। द्वापरादि युगों मे जो लोग दास रहते थे वे ही कलियुग मे स्वामी हो जायेंगे। मुनियो ! यह तो काल चक्र है। कभी गाडी नौका पर रहती है कभी नौका गाडी पर। पानी मे गाडी को नौका पर चढा कर पार करते हैं। स्थल मे नौका को गाडी पर चढा कर ले जाते हैं।

अन्य युगों में जो शूद्र और दास सेवा करना ही अपना परम धर्म समझते थे, वे कलियुग मे निरन्तर राज्यसत्ता प्राप्त करने को व्यग्र रहेंगे और राज्य सत्ता को प्राप्त कर भी लेंगे। वे लोग धर्म को ही अपना शत्रु समझेंगे। अतः धर्म को दबा कर अधर्म का प्रचार करेंगे। ज्यों ज्यों कलियुग का समय बीतता जायगा त्यों त्यों अधर्म का प्रचार बढ़ता जायगा। कलियुग मे सत्य, दया, तप और दान आदि का नाम नहीं रह जायगा। लोग बात बात पर झूठ बोला करेंगे सत्यवादी तो करोडों मे भी ढूँढने पर न मिलेगा। दया तो किसी के हृदय में रह ही न जायगी। माता पिता अपनी सन्तानो को मार डालेंगे। कुलटा स्त्रियाँ पैदा होते ही बच्चों का गला घोट दिया करेंगी। तपस्या कोई भी न करेगा। दान देने की किसी की प्रवृत्ति ही न होगी। सभी लोग बडे लोलुप होंगे। दुराचार कदाचार तो घर घर में फैल जायगा। लोग बहिन बेटी माता आदि किसी का विचार न करेंगे। सभी निर्दय और कलह प्रिय होंगे। बात बात मे लडाई करेंगे। एक दूसरे की हत्या कर डालेंगे। सभी कामुक भाग्य हीन और धर्म रहित होंगे।

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! यह सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते क्यों हैं। सदा एकसा ही समय क्यों नहीं रहता। भगवान् ने धर्म का प्रतिद्वंद्वी इस अधर्म को क्यों खड़ा कर दिया है। सदा धर्म का ही बालबाला क्यों नहीं रहता।"

इस पर हँस कर सूत जो बोले—"महाराज! साम्यवाद में में तो सृष्टि रह ही नहीं सकती। सृष्टि तो विषमता में है। जहाँ गुणों का साम्य हुआ वहाँ प्रलय हो गयो। जब तक तीनों गुण समान रहते हैं तब तक कोई भी सृष्टि का काम नहीं हो सकता। काल की प्रेरणा से प्रकृति में जहाँ क्षोभ हुआ गुणोंमें जहाँ विषमता हुई तहाँ ही सृष्टि का चक्र चल पड़ता है। ऊपर का नीचे नीचे का ऊपर होता रहता है यदि रथ का चक्का ऊपर नीचे न हो तो चले ही नहीं। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग दिव्य वर्षों से चार, तीन दो और एक सहस्र वर्षों तक तो रहते ही हैं। साथ ही नित्य भी ये चारों युग बीतते हैं। प्रति दिन प्रतिक्षण प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ये चारों युग आते हैं।

शौनक जी ने पूछा—"प्रतिदिन चारों युग कैसे आते हैं सूत जी। कृपा करके हमें इसे स्पष्ट समझाइये।"

सूतजी बोले—"देखिये महाराज! प्रत्येक पुरुषके हृदयमें सत्व, रज और तम ये तीन गुण होते हैं। कभी सत्वगुण युक्त वृत्ति हो जाती है कभी रजोगुणी और कभी तमो गुणी। काल की प्रेरणा से ये भाव चित्त में सदा बदलते रहते हैं। कभी चित्त प्रसन्न हो जाता है कभी दुखी हो जाता है तथा कभी शोक मग्न बन जाता है।"

शौनक जी ने कहा—"सूतजी! हमें इसे पृथक् पृथक् बताइये। कैसे समझें कि अब हमारे मन में सत्ययुग बर्त रहा है?"

सूतजी बोले—"महाराज! कैसा भी लोभी क्यों न हो कभी

उसकी भी देने की इच्छा हो जाती है। कैसा भी निर्दयी क्यों न हो कभी उसे भी दया आ जाती है। कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है जिसके मन में एकबार सत्ययुग, एकबार त्रेता, एकबार द्वापर और एकबार कलियुग का प्रादुर्भाव न होता हो। जिस समय चित्त में सत्वगुण की वृद्धि होती है उस समय मन शान्त सा होता है बुद्धि निमल सी हो जाती है इन्द्रियों म आह्लाद सा होता है। उस समय आत्मा परमात्मा का प्रश्न उठता है ज्ञान की ओर स्वाभाविक रुचि होती है। कुछ देने की कुछ दान धर्म करने की इच्छा उत्पन्न होती है। उसे पूरा न कर सकें यह दूसरा बात है। बहुत से लोग अनुभव भी नहीं कर सकते किन्तु ऐसी स्थिति होती सबकी एक बार है। जिस समय सत्व की वृद्धि हो जाय वही सत्ययुग है।

जब मनमें धर्म काम और अर्थ सम्पादन की इच्छा प्रबल हो तब समझना चाहिये अब रजोगुण की प्रवृत्ति है और अब त्रेता युग उदय हो गया है। उसमें कुछ अश अधर्म का होता है अधिक अंश धम का।

जब मनमें लोभ की वृत्ति उत्पन्न हो जाय, असन्तोप बढ जाय, मान सम्मान की इच्छा प्रबल हो जाय, दम्भ और मत्सर की ओर मन का झुकाव हो जाय तथा काम्य कर्मों को करने की इच्छा प्रबल हा तो समझ लेना चाहिय अब रज और तम का मिश्रण हो गया है अब द्वापर युग बर्त रहा है।

जब तमकी प्रबलता होती है, तब क्षुद्र विचार मनमें उठने लगते हैं। कपट, असत्य, निद्रा, तन्द्रा, हिंसा, विपाद, शोक, मोह, भय और दीनता य भाव मनमें आने लगते हैं। यही तम प्रधान कलियुग क चिन्ह हैं। ये समष्टि रूप से भी रहते हैं और व्यष्टि रूप से भी। जब ये समष्टि रूप से होते हैं तब सर्वत्र कलियुग

छा जाता है सबकी मति ऐसी ही हो जाती है। आजकल पृथिवी पर कलियुग ही वर्त रहा है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! पृथिवी पर तो बड़ा अधर्म बढ़ रहा है।"

हँसकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! अभी क्या अधर्म बढ़ रहा है ? आप अभी से घबड़ा गये। अभी तो कहीं यज्ञ याग भी सुनाया पड़ते हैं भगवान की कथायें होती हैं, कीर्तन महोत्सव भी होते हैं। ज्यों ज्यों कलियुग बढ़ता जायगा इनका नाम भी लोप होता जायगा। कलियुग में प्रायः सभी लोग भाग्यहीन होंगे वे दिन में अनेक बार खायँगे, खाने में ही उनका चित्त लगा रहेगा। जब जो वस्तु खाने को पावेंगे तुरन्त उसे मुंह में रख लेंगे। बड़े कामी, दुराचारी होंगे। उन्नति के नाम पर वे स्त्रियों को सदा सब समय साथ रखेंगे। वे अपनी काम लोलुपता के लिये स्त्रियों से पुरुषोचित काम करावेंगे स्त्रियों में भी सतीत्व की भावना न रहेगी। सती धर्म की खिल्लियाँ उड़ायी जायँगी। सभी स्त्रियाँ स्वेच्छा चारिणी हो जायँगी। उनमें पर पुरुष और निज पुरुष का भेदभाव ही न रहेगा। चाहे जिसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेंगी। पुरुष भी स्त्रैण, कामुक और सदाचार हीन हो जायगे। रक्षा का प्रबन्ध न रहेगा। चोर लुटेरों का प्राबल्य रहेगा। जहाँ भी किसी के पास पैसा देखेंगे वहीं उसे लूट लेंगे। उपदेशक अधिकांश शूद्र और वर्ण संकर होंगे। वे ऊँचे ऊँचे आसनो पर बैठकर धर्म का उपदेश देंगे। वेद शास्त्रों का नाम तो लेंगे किन्तु वेद शास्त्रों से वे सदा अभिविज्ञ रहेंगे। उपदेशकों में वेष; वाचालता, निर्लज्जता, धृष्टता और स्वार्थपरता ये ही शेष रह जायँगे। ऐसे ठग पाखंडी वेद शास्त्रों को भी दूषित कर देंगे।

कलियुगी राजाओं का एकमात्र उद्देश्य रहेगा जैसे हो तैसे प्रजा को चूसना। वे प्रजा का हित न करके अहित करेंगे।

रक्षक न होकर भक्षक ही बन जायँगे। वे अपने स्वार्थ के लिये घोर पाप किया करेंगे नाम मात्र के ये राजागण एक प्रकार के लुटेरे ही होंगे।

कलियुग में ब्राह्मण कहीं ही कोई दिखायी देगा जो होंगे वे वर्ण संकर नाच और निंदित होंगे। पैसा लेकर नीच से नीच काम करने को उद्यत हो जायँगे। राजद्वार में असत्य साक्षी देंगे। पर स्त्री गामी, नीच, लम्पट और प्रतिक्षण पेट की चिन्ता में ही निमग्न रहने वाले होंगे। वे धर्म, दम, शौच, अध्ययन आदि सब ब्राह्मणोचित कर्मों का त्याग करके केवल गले में सूत्र डालकर उदर पूर्ति करने में ही लगे रहेंगे।

ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत से हीन हो जायँगे वे केवल वेष बनाकर आजीविका के लिये अपने नाम के आगे ब्रह्मचारी शब्द मात्र ही लगाया करेंगे उनमें ब्रह्मचर्य के शौच, अध्ययन, यज्ञ तथा व्रत पालन के क्षुद्र भी नियम न रह जायँगे। वे अपनी काम वासना की पूर्ति के लिये सब कुछ कुकर्म करने लगेंगे।

जो गृहस्थी सदा सब को देने वाला कहाता था, वह लेने वाला ही जायगा। गृहस्थी भी भीख माँगने लगेंगे। वे भी भिक्षा वृत्ति पर निर्वाह करने लगेंगे। तपस्वी लोग चौराहों पर बैठकर आसन दिखाकर धूनी रमाकर गण्डातावीज देकर स्त्रियों से सम्बन्ध जोड़ेंगे और दुराचार में निरत हो जायँगे। साधु सन्यासी का वेष बनाकर उपदेश देने वाले अत्यंत लोभी और कृपण बन जायँगे। अर्थोपार्जन ही उनका एकमात्र लक्ष्य हो जायगा। असत्य बोलकर शिष्य बनाकर गण्डा, तावीज, औषधि तथा अन्य वस्तु देकर वे रुपया पैदा करने में ही लग जायँगे। जिस सन्यासी के पास जितना ही अधिक धन होगा, वह उतना ही बड़ा प्रतिष्ठित माना जायगा।

स्त्रियाँ अत्यंत कामुकी बन जायँगी। वे एक पति के अधीन रहना स्वीकार न करेंगी। वे दुर्बल ठिंगनी और लज्जा हीन हो जायँगी वे वेश्याओं की तरह अपने अंगों को खोलकर सबके सम्मुख चला करेंगी, वे बहुत भोजन करने वाली तथा जिह्वा लोलुपा होंगी। वे निर्जीव छोटे छोटे चूहोंके सदृश बहुत संतानोंको उत्पन्न करनेवाली होंगी। वे बोलेंगी तो ऐसी लगेंगी मानों मुख से विष उगल रही हैं। वे एक पुरुष से सम्बन्ध करेंगी, दश पाँच दिन उसके साथ रहेंगी फिर उसकी चोरी करके माल मसाला लेकर दूसरे के साथ भाग जायँगी। उनका सब व्यवहार कपट पूर्ण होगा। वे सोते हुए पुरुषों की हत्या करेंगी, सन्तानों को मार कर अँधेरे में फेंक आवेंगी, लोगों को विश्वास देकर उनके साथ विश्वासघात करेंगी विष दे देंगी तथा और भी अत्यन्त दुःस्साहस पूर्ण कार्यों को सरलता से कर डालेंगी।

व्यापारी नीच विचार वाले हो जायँगे। उन्हें धर्म कर्म का कुछ भी ध्यान न रह जायगा। अर्थोपार्जन के लिये बड़े से बड़ा अनर्थ कर डालेंगे। लोगों को जिस प्रकार भी ठगा जा सके उस प्रकार ठग लेना यही उनका एक मात्र उद्देश्य रह जायगा। कौन सी आजीविका निन्दित है कौन सी विहित है इसका विचार ही न रह जायगा। ब्राह्मण सुगमांस बेचेंगे लोग अपने बहिन बेटियों को बेचकर उनसे आजीविका चलावेंगे। पशुओं को बधिकों के हाथों बेच देंगे। आपत्ति काल न होने पर भी निन्दित से निन्दित आजीविका से धन कमाने का प्रयत्न करेंगे।

स्वामी सेवक का भाव उठ ही जायगा। लोग वेतन लेकर सेवा करेंगे। तनिक से वेतन के पीछे स्वामी का अपमान करेंगे,

उन्हें बुरा भला कहेंगे, स्वामी कितना भी सज्जन हो उसकी सदा निन्दा करेंगे। अधिक वेतन मिलने पर उसे छोड़कर दूसरे स्थान में चले जायँगे ऐसे ही क्रूर स्वामी भी हो जायँगे। सेवक रोगी हो गया तो उसका वेतन काट लेंगे, काम करने योग्य न रहा तो उसे उत्तर वेतन न देंगे। कुल परम्परा गत सेवक का भी संकोच न करेंगे। स्वामी चाहेंगे सेवक के शरीर के रक्त को भी चूस लें। सेवक चाहेंगे स्वामी के सर्वस्व का अपहरण कर लें। स्वामी सेवक का सम्बन्ध शत्रु जैसा रह जायगा। जो गौ दूध न

देगी उसको वधिक के हाथों बेच देंगे उसे चारा न देंगे। गौओं से से बोझ ढुवावेंगे उन्हें हल में चलावेंगे।

सभी पुरुष शिश्नोदर परायण हो जायँगे। जो स्त्री उनके मन पढ़ जायगी उसकी सब प्रकार से सेवा करेंगे। माता पिता आदि सम्बन्धियों को तो पूछेंगे ही नहीं। किन्तु स्त्री के सम्बन्धियों को और जिनको वह कहेगी उनको सर्वस्व देने को उद्यत हो जायँगे दान लेने के अधिकारी धर्मध्वजी वर्ण संकर ही समझे जायँगे। वे ही बड़े बड़े आचार्य पदों पर प्रतिष्ठित होंगे।

मुनियो! अधर्म की वृद्धि होने से पृथिवी माता बीजों को अपने उदर में छिपा लेंगी। बीज बोने पर भी अंकुर उत्पन्न न होंगे। सर्वत्र अन्न का अभाव हो जायगा। लोग दाने दाने अन्न के लिये व्याकुल होंगे। जब पेट ही न भरेगा, तब देवता और पितरों के कार्यों को कौन करेगा। लोग भूमि में अन्न बोवेंगे अनावृष्टि के कारण उत्पन्न ही न होगा या अतिवृष्टि के कारण गल जायगा। प्रतिवर्ष अन्न की कमी होने से सदा दुर्भिक्ष बना रहेगा। शासक गण शासन के यन्त्र को अत्यन्त व्यय साध्य बना देंगे। उसे चलाने के लिये करके ऊपर कर लगा देंगे। लोग इतने अधिक राजकरों को देने में असमर्थ हो जायँगे। सदा उद्विग्न बने रहेंगे। वस्त्रों का मूल्य बढ़ जायगा। लोग वस्त्रों के बिना इधर उधर घूमेंगे अन्न, जल, वस्त्र, शयन, व्यवसाय सभी के अभाव में लोग दुखी रहेंगे। लोगों की स्नान करने में रुचि न रहेगी। पहिनने को वस्त्र ही न मिलेंगे तो आभूषणों की तो चर्चा ही क्या है। भूखे प्यासे दुखित, अन्न वस्त्र से हीन, बाल बढ़े हुए लोग पिशाचों के समान दिखायी देंगे। तनिक तनिक सी वस्तु के लिये लोग झगड़ा करेंगे। बीस कौड़ी के पीछे सौहार्द मैत्री तथा सम्बन्ध आदि को सब भूल जायँगे। दमड़ी छदामके पीछे हत्या कर देंगे। एक छदाम

के पीछे मर जायँगे तथा मार डालेंगे। सद्भाव को तिलाञ्जलि देकर अपने सुहृदों का भी अन्त कर देंगे।

कलियुगी लोग स्वार्थपरता में इतने अन्धे हो जायँगे, कि अपने वृद्ध माता पिता का भी पोषण न करेंगे। काम न करने योग्य होने पर उन्हें घर से निकाल देंगे। वे इधर उधर भटकते हुए अनाथाश्रमों में अपने दिन व्यतीत करेंगे। इसी प्रकार पिता भी अपने सर्व समर्थ पुत्रों का प्रेमपूर्वक पालन पोषण न करेंगे। लोगों की अधर्म में, अन्याय में, तथा असत् कार्यों में स्वाभाविकी रुचि होगी।

यह सुनकर दुखित मन से शौनक जी ने कहा—"महाभाग! कलियुग की कलुषित करतूतें तो हम आपके मुख से कई बार सुन चुके। अब आप उसी एक गीत को बारबार क्यों दुहराते हैं। हम समझ गये कलियुग में दोष ही दोष रहेंगे, किन्तु इन दोषों से मुक्त होने का कोई उपाय भी तो होगा?"

सूतजी ने कहा—"मुनियो! कलियुग के दोषों से बचने का उपाय तो मैं अनेकों बार बता चुका हूँ, किन्तु इन कलियुगी पुरुषों का उस सरलाति सरल उपाय पर विश्वास तो न होगा। कलियुगी पुरुषों की बुद्धि तो पाखण्ड पथों की प्रबलता से विपरीत तथा विक्षिप्त हो जायगी। जिन श्रीहरि के पादपद्मों में इन्द्रादि लोकपाल अपने मणिमय मुकुटों से युक्त मस्तकों को रगड़ा करते हैं, उन सर्व अघहारी जगत् गुरु श्री अच्युत की ये कलियुगी पापी पुरुष पूजा न करेंगे। मुनिवर! सोचिये, पाप होते कैसे हैं? जब द्रव्य दूषित हो जाते हैं और उन दूषित द्रव्यों द्वारा जो कार्य किये जाते हैं और उन से अन्तःकरण मलिन हो जाता है दूषित देशों में जो कार्य होते हैं, उनसे भी दोषों की उत्पत्ति होती है।

कर्ता के दोष से शुभ कार्य भी दूषित हो जाते हैं। काल के दोष से भी अन्तःकरण मलिन बन जाता है। यदि भगवान् की मधुर मूर्ति मन में बैठ जाय, यदि अघहारी अच्युत अन्तकरण में आ जायँ, तो सभी प्रकार के दोष क्षण भर में उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे सिंह के आते ही सभी पशु भाग जाते हैं। हृदय में जहाँ मनमोहन की माधुरी मूरति समायी नहीं तहाँ सम्पूर्ण कलि कल्मष नष्ट हो जाते हैं। भगवान् की ललित लीलाओं का श्रवण, उनके नाम और गुणों का कीर्तन, उनके दिव्य चिन्मय श्री विग्रह का एकाग्र चित्तसे ध्यान, उनका विधिवत पञ्चोपचार प्रेम पूर्वक उनका किया हुआ समादर इन सभी कार्यों के करने से भगवान् भक्त के हृदय में आकर बैठ जाते हैं। हृदय में जहाँ भगवान् आये नहीं तहाँ एक दो या दश बीस जन्मों के पापों की बात तो कौन कहे, दश सहस्र जन्मों के पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। अन्तःकरण तो शुद्ध ही है, उसमें कामवासना के समा जाने से वह मलिन बन जाता है। जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण में ताँबा आदि धातुओं के मिलने से उसमें मलिनता आ जाती है। उस मलिन सुवर्ण को अग्नि में डाल दो। अग्नि उसमें प्रवेश होकर उसके समस्त मल को गलाकर उसे विशुद्ध बना देगी। उसी प्रकार भगवान् अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर उसके समस्त मलों को जलाकर भस्म कर के उसे निर्मल बना देते हैं। इसलिये मुनियो! जिसे कलिकल्मषों के नाश करने की इच्छा हो उसे भगवान की कथा सुननी चाहिये, भगवान के नामों का, गुणों का, कीर्तन करना चाहिये, उनका ध्यान, पूजन तथा आदर करना चाहिये।

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! अन्तः करण की शुद्धि का और भी कोई उपाय है?"

सूत जी ने कहा—"मुनियो! और भी कर्मों से अन्तः करण

शुद्ध होता है, किन्तु आत्यंतिकी शुद्धि तो तभी होगी जब हृदय में भगवान् विराजमान हो जायँगे। इस विषय को मैं आगे आपको समझाऊँगा आप एकाग्र चित्त से इसे श्रवण करें।

छप्पय

कलियुग में पाखण्ड पुजै पथ पुण्य न सूझै।
हाय! अभागो पुरुष प्रेम तैं प्रभुहिँ न पूजै।।
जिनि के अघ हर नाम नासि सब दोषनि देवैं।
कलियुग के अति अधम पुरुष तिनिकूँ नहिँ लेवैं।।
मरन समय है कैं विवश, राम कृष्ण गोविंद कहैं।
तो फिरि पाप पहाड़ हू, नाम लेत छिन हैं ढहैं।।

कलिकल्मषों को कृष्ण कीर्तन ही काट सकता है।

(१३५०)

विद्यातपः प्राण निरोध मैत्री
तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्त शुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा
यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते।।

(श्री भा० १२ स्क० ३ अ० ४८ श्लो०)

छप्पय

नामी नाम प्रभाव हिये में तत् छिन आवें।
सकल पाप सन्ताप श्याम के नाम नसावें॥
भूपतितें गुरुदेव कहें—नृप ! मत घबराओ।
मरन समय में नाम लेउ निश्चय तरि जाओ॥
अवगुन ही अवगुन भरे, परि जा कलि में एक गुन।
ध्यान, यज्ञ, पूजानि के, मिलें सकल फल नाम सुन॥

शुद्ध वस्तु में जब अशुद्ध वस्तुएँ मिल जाती हैं, तो फिर युक्ति से अशुद्ध और अनावश्यक वस्तुओं को उनमें से पृथक करके

*श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! विद्या, तप, प्राणायाम, मैत्री, तीर्थस्थान, व्रत, दान, अथवा जप आदि से भी चित्त की शुद्धि होती है, किन्तु वैसी अत्यन्त शुद्धि नहीं होती जैसी हृदय में श्री अनन्त भगवान के विराजमान होने पर होती है।"

पुनः शुद्ध बनाया जाता है। जैसे गेहूँ, जौ, चना आदि अन्न शुद्ध है। भूमि के संसर्ग से भूमि के संसर्ग से उनमें कंकड़ी भूसा या कूड़ा करकट मिल गया तो सूप से फटककर बीनकर उन्हें शुद्ध कर लिया जाता है। कपड़ धुला हुआ शुद्ध शुभ्र है, उसमें कीचड़ लग गयी, तो खार से जल में धोकर उसे पुनः शुद्धकर लिया जाता है। पीतल ताँबे आदि के पात्र हैं उन पर मैल जम गया है, नीबू खटाई आदि से रगड़ कर उन्हें पुनः चमकीला बनाया जाता है। तलवार आदि लोहे को वस्तुयें उनपर काई लग गयी तो चिकनाई आदि से रगड़कर उन्हें निर्मल कर लेते हैं दूध में जल मिल गया है, अग्नि पर चढ़ाकर जल जल को जला देते हैं दूध दूध का अंश बच जाता है। सुवर्ण में अन्य धातुएँ मिल गयीं अग्नि में डालकर सुवर्ण पृथक कर लिया जाता है अन्य धातुएँ पृथक् शुद्ध हो जाने से चमकने लगता है। दर्पण पर धूलि आदि जम गयी है, उसे वस्त्र से पोंछकर निर्मल कर लेते हैं तब उसमें अपना प्रतिबिम्ब दिखायी देने लगता है, इसी प्रकार अन्तःकरण तो शुद्ध ही है किन्तु रजोगुण तमोगुण के कारण उसमें काम, क्रोध, लोभ मोहादि दुर्गुणों का समावेश हो गया है इनसे वह अशुद्ध बन गया है। उस अशुद्ध अन्तःकरण का युक्ति से साधनों द्वारा शुद्ध कर लिया जाय तो उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब दिखायी देगा। आत्म साक्षात्कार हो जायगा।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! आपने मुझसे अन्तःकरण को विशुद्ध बनाने के उपाय पूछे, उनमें से मैं कुछ को बताता हूँ। शास्त्रकारों ने इस मलिन मन को निर्मल बनाने के अनेकों उपाय बताये हैं। जिनका मन जिस साधन से शुद्ध हुआ है उसने उसी साधन को सुगम सरल और श्रेष्ठ बताया है, कुछ लोग कहते हैं, मन मलिन होता है अविद्या के कारण। जब पुरुष असत् का सत् और अनित्य को नित्य मान लेता है, तभी सब अनर्थ करने

लगता है। उन्हीं अनर्थों से अन्तःकरण अशुद्ध बन जाता है, उसे शुद्ध बनाने का एक ही उपाय है विद्योपार्जन करना। विद्या से अविद्या का जब नाश हो जाता है, तब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और शुद्ध अन्तःकरण वाले को आत्म साक्षात्कार हो जाता है।

कुछ लोगों का कथन है, कि अन्तःकरण के अशुद्ध होने का एक मात्र कारण है, विषयों में भोग बुद्धि होना। जितने ये शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शादि विषय हैं जब हृदय इनमें सुखानुभूति करने लगता है तब हृदय तदाकार हो जाता है। स्पर्शेन्द्रिय कोमल स्पर्श के लिये निरन्तर लालायित बनी रहती है। जहाँ मनोनुकूल सुन्दर सुखद गुलगुल स्पर्श प्राप्त हुआ कि मन प्रफुल्लित हो जाता है। सुन्दर, नयनाभिराम रूप को देखकर आँखें तृप्त हो जाती हैं। चित्त प्रसन्न हो जाता है। इसी प्रकार अच्छी सुगन्धि को सूँघकर, अच्छे सुन्दर स्वादिष्ट रसों को चखकर सुन्दर हृदय स्पर्शी गायन आदि को सुनकर मन मुदित होता है। इससे आत्मानुसन्धान की इच्छा नहीं उठती। जब तक तपस्या करके शरीर को क्लेश न दिया जाय, सुवर्ण की भाँति इसे तपाया न जाय, तब तक मन विषयों से विरत न होगा! अतः अन्तःकरण की शुद्धि का एकमात्र साधन तप है। तपस्य से ही विषयोंसे वैराग्य संभव है। बिना विषयों से वैराग्य हुए, मन की मलिनता मिट ही नहीं सकती।

कुछ लोगों का कथन है, कि वाह्य तप से विशेष लाभ नहीं। आप कर्मेन्द्रिय का संयम करके विषयों से विरत होकर बैठे रहें और मन से विषयों का चिन्तन करते रहें, तो इससे क्या लाभ। सब अनर्थों की जड़ तो मन है। मन का स्वभाव है चंचलता करना। यदि प्राणों का संयम हो जाय तो मन अपने आप संयम में आ जाता है। जैसे पक्षी के पैर में सूत बाँधकर उसे पेड़ की

डाली में बाँध दो। कुछ देर उड़ने की चेष्टा करेगा फिर पङ्ख फटफटाकर वहीं बैठ जायगा। इसी प्रकार प्राण वश में होने से मन स्वतः ही ही वश में हो जायगा, अतः मन को वश में करने का-अन्तःकरण का विशुद्ध बनाने का-एकमात्र साधन प्राणायाम है। बढ़ा हुआ प्राणायाम ही प्रत्याहार है। वही ध्यान, धारणा और समाधि के रूप में परिणत होता है।

कुछ लोगों का कथन है, अन्तःकरण के अशुद्ध होने का कारण है राग द्वेष। आप कुछ लोगों के प्रति तो राग कर लेते हैं। ये मेरे माता पिता हैं, यह मेरी पत्नी है। ये पुत्र हैं ये बन्धु बान्धव हैं ये मित्र हैं। इनको सुख हो। जो इनके सुख में विघ्न डालते हैं, रोड़े अटकाते हैं उन्हें अपना शत्रु मान लेते हो, उनसे द्वेष करने लगते हो। इसी से अन्त करण अशुद्ध हो जाता है। यदि राग द्वेष को निकालकर सबसे मैत्रीभाव कर लो सभी को आत्म रूप से अनुभव करो तो अन्तःकरण अपने आप ही विशुद्ध बन जायगा। जब सब भूतों को अपने समान अपना आत्मीय ही मानने लगे तो, शोक मोह राग द्वेष को स्थान ही नहीं रह जाता। इन से रहित हुआ अन्तःकरण ही विशुद्ध माना जाता है। अतः सर्वभूतों में मैत्री भाव स्थापित करना ही अन्त करण को विशुद्ध बनाने का श्रेष्ठ साधन है।

कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य शरीर से पापों का होना स्वाभाविक है। मनुष्य शरीर ही पाप पुण्यों से बना है। कोई भी कर्म करो उसमें कुछ न कुछ पाप का अंश रहता ही है। पापों की निवृत्ति होती है तीर्थ स्नान से। जैसे सब कर्मों में पाप रहता है वैसे ही सब तीर्थों में पुण्य रहता है। अतः पाप की निवृत्ति और पुण्यों की प्राप्ति के लिये तीर्थ स्नान करना चाहिये। तीर्थों में स्नान करते करते पुण्य बढ़ जायगा।

कुछ लोग कहते हैं कि पाप आदि अनियमित जीवन के

कारण होते हैं। हमारा जीवन यदि व्रतमय हो हम अपने जीवन को एक नियम में बाँध लें कि अमुक दिन एक बार भोजन करेंगे, अमुक दिन नमक न खायँगे अमुक दिन उपवास करेंगे। अमुक महीने में चान्द्रायण करेंगे। ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करेंगे इस व्रतमय जीवन होने से अन्तःकरण की मलिनता दूर हो जाती है। व्रत से दीक्षा होती है दीक्षा से श्रद्धा और श्रद्धा से अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

कुछ लोग कहते हैं कि अन्तःकरण के मलिन होने का कारण है संग्रह। जो जितना ही अधिक संग्रही होगा वह उतना ही अधिक कृपण होगा। क्योंकि वह जो काम करेगा फल के हेतु से करेगा उनके अन्तःकरण की शुद्धि दान करते करते उनके मन में जो संग्रह से कालिख पुत गयी है वह धुल जायगा। दान देने से अन्तःकरण में एक अपूर्व सुख होता है। उस सुख से ही मन शुद्ध हो जाता है।

कुछ लोगों का कथन है, कि मनुष्य जो यह व्यर्थ की बात को बोलता है इसी से अन्तःकरण मलिन होता है। जैसे हमने किसी को कह दिया "मूर्ख" भले ही वह मूर्ख ही क्यों न हो, किन्तु अपने को कोई भी मूर्ख नहीं मानता उसके हृदय में ये दो शब्द बाण की भाँति चुभ जायँगे। उसे क्षोभ तथा दुःख होगा। अन्तःकरण तो एक ही है, उसको दुख होगा तो तुम्हें भी अवश्य दुख होगा चाहे तुम उस समय क्रोध में उसे अनुभव भले ही मत करो। बोलोगे तो उसमें कोई न कोई ऐसा शब्द निकल ही जायगा जिससे दूसरों को क्लेश पहुँचे। दुःख से ही अन्तःकरण मलिन होता है। अतः वाणी का संयम करो। वाणी का संयम होता है। इष्ट मन्त्रों के जप से। या तो मौन रहो और न रह सको तो सत्य और प्रिय वचन बोलो। नियमपूर्वक इष्ट मन्त्र का जप करो। जप करते करते अंतःकरण अपने आप ही शुद्ध हो जायगा।

कुछ लोग कहते हैं अष्टाङ्ग योग से अंतःकरण शुद्ध होता है, कुछ लोग कहते हैं निष्काम कर्म से कुछ लोग कहते हैं लय योग से इसी प्रकार अनेक ऋषियों के अनेक विचार हैं।

शौनक जी ने कहा—"सूत जी! सब कुछ कहते हैं। आप उनके विचारों से सहमत नहीं है क्या? क्या इन साधनों से अंतःकरण की शुद्धि नहीं होती?"

शीघ्रता के साथ सूतजी ने कहा—"हाँ, महाराज होती है अवश्य होती है। मैं मना कब करता हूँ, परंतु भगवन्!"

शौनक जी ने कहा—"हाँ, सूतजी! उस परंतु को भी बता दीजिये जहाँ, किंतु परंतु तो भी ये शब्द लग जायँ, वहाँ कुछ कसर दिखायी पड़ जाती है।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! इन साधनों से चित्त की शुद्धि होती तो है, किंतु अत्यंत चित्त की शुद्धि नहीं होती। जैसे झाड़ू बुहारू देने से भवन शुद्ध तो होता है, किन्तु अत्यन्त शुद्ध नहीं होता, फिर झाड़ने से उसमें कुछ न कुछ कूड़ा कड़वट निकल ही आता है, अत्यन्त शुद्ध तो सुगन्धित जल में सुन्दर गोबर मिलाकर लीपने से ही होता है। इसी प्रकार विद्या, तपादि साधनों से तो निर्मल बनता ही है, किन्तु जब तक उसमें श्री अनन्त भगवान् आकर विराजमान नहीं होते तब तक वह कुछ न कुछ मलिन बना ही रहता है। इसलिये सभी उपायों से भगवान् को हृदय में. बिठाना चाहिये।

मेरे गुरुदेव भगवान् शुक राजा परीक्षित् से कह रहे हैं—"राजन्! अब आज आप का अन्तिम दिन है। शमीक मुनि के पुत्र शृङ्गी ऋषि के शाप की अवधि अब आना ही चाहती है। आप मोह ममता को छोड़कर हृदय मे केशव भगवान् को विराजमान करो। सावधान होकर श्यामसुन्दर के स्वरूप का स्मरण करो उनके ही मनहर अघहर सुखकर नामों का निरन्तर गायन

करो। ऐसा करने से तुम समस्त संसारी बन्धनों से सदा के लिये छूट जाओगे तुम्हें परमपद की प्राप्ति हो जायगी। जिनकी मृत्यु सन्निकट हो उनके लिये संसारी सभी सम्बन्धों को भुलाकर एक-मात्र भगवान् का ही ध्यान करना चाहिये। ध्यान करने वाले व्यक्ति को सर्वाधार सर्वात्मा भगवान् वासुदेव अपने स्वरूप में लीन कर लेते हैं।

दीनता के स्वर में राजा परीक्षित् ने कहा—"भगवन्! कराल कलिकाल ने मनुष्यों की बुद्धि को ऐसा विपरीत बना दिया है, कि इस युग में लोगों की शुभ कार्यों में प्रवृत्ति ही नहीं होती।"

इस पर मेरे गुरुदेव ने कहा—"राजन् आपका कथन सत्य है। अवश्य ही यह कलियुग दोषों की खान है, किन्तु इतना सब होने पर भी इसमें एक बड़ा भारी गुण है।"

राजा ने पूछा—"भगवन्! ऐसा कौन सा भारी गुण कलियुग में है?"

श्री शुक बोले—"राजन्! कलिकाल में कुछ भी न बन सके, तो केवल वाणी श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण ऐसे भगवान् के नामों का ही उच्चारण करे। केवल भगवान् के नामों का कीर्तनमात्र करने से ही पुरुष सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त हो जाता है।

राजा ने पूछा—"महाराज! इतनी छूट कलिकाल में क्यों दी गयी है।"

श्री शुक बोले—"राजन्! जैसा जीव होता है, भगवान् उसके अनुरूप ही भोजन भी देते हैं। गरुड़ जी तो परम भगवत् भक्त वैष्णव हैं, किन्तु उनका आहार सर्प ही है। जैसा समय होता है वैसे ही वस्त्र पहिने जाते हैं जाड़ों में मोटे और ऊनी वस्त्र पहिने जाते हैं गरमियोंमें पतले और सूती। जैसा मनुष्य होता है उस पर उतना ही बोझा रखा जाता है। बलवान् और बड़ा होता है तो

उस पर अधिक रखते हैं। छोटा बचा या दुबला पतला हुआ तो उस पर कम बोझा रखा जाता है। इसी प्रकार जैसा युग होता है उसके अनुरूप ही साधन भी होते हैं। सत्ययुग के लोग अधिक अधिक आयु वाले, अधिक शक्तिशाली, अधिक सहिष्णु तथा शुद्ध सत्त्व प्रधान होते थे उनको ध्यान द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती थी, उनको बाह्य कर्मकाण्ड की अपेक्षा नहीं रहता था।

त्रेता में आकर कुछ शक्ति क्षीण हुई, आयु भी लोगों की कम होने लगी। रजोगुण भी बढ गया, कुछ बाह्य कर्मकाण्ड की भी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अतः उस युग में बड़े बडे यज्ञ-यागों द्वारा ही सिद्धि होती थी। त्रेता में यज्ञयाग ही उपयुक्त साधन समझा गया। द्वापर में रजोगुण के साथ कुछ तमोगुण भी मिल गया। उस युग में वैदिक तान्त्रिक पद्धति से पूजा करने से ही सिद्धि प्राप्ति होती थी। अब कलियुगी लोगों के अन्तःकरण तमोगुण प्रधान हो गये। ध्यान तो होता नहीं। ध्यान करने बैठो तो निद्रा घेर लेगी या ऊट पटाँग विचार आने लगेंगे। वैसे साधारण स्थिति में मन साधारणतया शान्त रहेगा, जहाँ ध्यान में बैठे तो और भी अधिक चंचल होगा। व्यापारी है तो पूरे व्यापार का चिन्तन होने लगेगा, जो हिसाब पहिले नहीं लगता था, वह भजन में बैठते ही लगेगा। उस समय तमोगुण और बढ जायगा क्षण भर भी चित्त भगवान् में नहीं लगता। और जिनका चित्त लग जाता है वे कलियुगी न होकर सत्ययुगी जीव हैं। सर्वसाधारण का चित्त ध्यान में नहीं लगता। रही यज्ञयागों की बात। सो यज्ञ के लिये शुद्ध सामग्री नहीं मिलती। गो के शुभ्र घृत के दर्शन दुर्लभ हो गये। शुद्ध वेद मन्त्रों का उच्चारण करनेवाले आचार्यों का अभाव हो गया। देश, काल तथा पात्र सभी यज्ञ के विपरीत बन गये। यह भी साधन द्रव्य साध्य और श्रम साध्य हो गया। अब वैदिक या तान्त्रिक विधि से पूजावाला साधन रहा

सो उसमें भी विधि की प्रधानता है। सामग्रियों की अपेक्षा है। कलियुगी लोगों के लिये इन सब को जुटाना असम्भव न भी हो तो कठिन अवश्य है इसलिये कलियुगी लोगों को तो ऐसा साधन चाहिये कि सत्ययुग में जो फल भगवान् के ध्यान से मिलता हो, त्रेता में जो फल यज्ञ से और द्वापर में प्रभु की पूजा से वही फल कलियुग में किसी सरल सुगम सर्वोपयोगी साधन द्वारा मिल जाय। सो राजन्! शास्त्रकारों ने कृपा करके कलियुगी लोगों को ऐसा साधन बता दिया भगवन्नाम संकीर्तन से वे ही सब फल मिल जाते हैं जो दूसरे साधनों से मिलते थे। कलियुग का साधन भगवन्नाम कीर्तन है। इसलिये राजन्! तुम श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण इन नामों को रटते हुए अपने प्राणों को छोड़ो अवश्य ही तुम परम पद के अधिकारी बनोगे। मरना तो एक दिन सभी का है। जो जन्मा है वह मरेगा भी अवश्य। जिसकी सृष्टि है उसकी प्रलय है। लोग कहते हैं प्रलय किसने देखी! प्रलय तो प्रतिक्षण होती रहती है।"

इस पर महाराज परीक्षित् ने पूछा—"प्रतिक्षण प्रलय कैसे होती है भगवन्! इसे मुझे और समझा दीजिये।"

इस पर मेरे गुरुदेव ने कहा—"राजन्! प्रलय चार प्रकार की होती हैं। उनके नाम नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यंतिक हैं। इनका विवरण मैं तुम्हें बताता हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जिस प्रकार मेरे गुरुदेव ने चार प्रकार की प्रलय का वर्णन महाराज परीक्षित् से किया उसे मैं

आपको सक्षेप से सुनाऊँगा। महाराज ! जो प्रलय के रहस्य को समझ लेना है उसे फिर मृत्यु का भय होता ही नहीं। अतः मरने वालों को प्रलय रहस्य समझलेना अत्यावश्यक है।"

छप्पय

नाम कीरतन सरल सरस सबकूँ सुखदायक।
नाम कीरतन एक जगत में सत्य सहायक॥
नाम कीरतन करत ध्यान नामी को आवै।
नाम कीरतन करत हृदय कालिख धुल जावै॥
नाम कीरतन जो करै, रोइ पुकारें श्याम कूँ।
हरि सम्मुख नाचे निलज, ते पावें प्रभु धाम कूँ॥

—•०—

प्रलय के प्रकार

(१३५१)

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिकोलयः ।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ४ अ० ३८ श्लो०)

छप्पय

शौनक पूछें–"सूत ! प्रलय को मरम बताओ ।
प्रलयनि के कै भेद सरलता तें समुझाओ ॥"
सूत कहें–"मुनि ! प्रलय चार विधि वेद बतावें ।
नैमित्तिक अज दिवस अन्त में पुनि सो जावें ॥
पूर्ण होहि अज आयु जब, लीन होहिँ प्रकृती सबहिँ ।
भुवन चतुरदश प्रकृति में, मिलें प्रलय प्राकृत तबहिँ ।

संसार एक चक्र है, दीखता हुआ भी नहीं दीखता। जाड़े के दिनों में लड़के एक मिट्टी का छिद्रों वाला पात्र सा बनाते हैं उसमें छोटे छोटे कोयले भरकर अग्नि रखकर घुमाते हैं। घूमने से उसमें

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! ये जो नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक चार प्रकार की प्रलय हैं उनका वर्णन मैंने आपसे कर दिया । महाराज ! इस काल की ऐसी ही गति है ।"

से अग्नि की विस्फुलिङ्ग निकलकर एक प्रकार का मडलाकार चक्र बन जाता है। उसे अलात चक्र कहते हैं। दूर से देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता है, कि आकाश में एक चक्र स्थित है। वास्तव में वह स्थित नहीं। प्रतिक्षण नये विस्फुलिंग निकलते हैं पुराने विलीन होते जाते हैं। इसी प्रकार बारूद का भी एक चक्र घुमाते हैं। बडी शान्तता से बारूद निकलकर आकाश मे एक वृत्त सा बना लेता है, दूर से वह स्थिर वृत्तसा दीखता है किन्तु निरतर उसमें से बारूद के कण निकलते रहते हैं। वे न निकले तो वह वृत्त समाप्त हो जाय। यमुनाजी श्रावण भादों म भरी हुई दिखायी देता हैं। लोग दूर से देखकर यही समझते हैं जल इसी प्रकार इसमे सदा भरा रहता है, किन्तु वास्तविक बात ऐसी नहीं है। क्षण क्षण में जल कण बदलते रहते हैं। जो जल कण इस क्षण हैं वे आगे बह जाते हैं उनका स्थान दूसरे जल कण ग्रहण कर लेते हैं जब ये भी बहने लगते है तो तत्काल तीसर जल कण उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति करते हैं। ऐसे ही निरन्तर यह जल प्रवाह बहता रहता है। वर्षा के दिनो मे दीपक की लोय को देख-कर पतगे आते हैं आते ही दीपक की लोय मे जल जाते हैं, तुरन्त दूसर आ जाते हैं। यह क्रम लगा ही रहता है। इसी प्रकार यह ससार प्रवाह है। जो जन्मता है वह मरने के लिये सृष्टि होती है प्रलय के लिये। 'यद्दृष्टं तन्नष्टम्' जो दिखायी दिया वह तुरत नष्ट हो गया। दीपक की लोय क्षण क्षण म नष्ट हो रही है। किन्तु अपनी चतुरता से दूसरी लोय उसका स्थान ग्रहण करता है कि देखने वाले यही समझते हैं यह एक दीपक रात्रि भर जलता रहा। यह माया है यही भ्रम है यही अविद्या है, यही प्रकृति का खेल है।

शौनकजी ने पूछा—"तो हाँ, सूतजी! हमे आप प्रलय के प्रकारों को समझावें।"

सूतजी बोले—"महाराज! मेरे गुरुदेव ने प्रलय चार प्रकार की बतायी हैं। नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यंतिक। अब इनकी व्याख्या सुनिये। प्रथम नित्य प्रलय को ही लीजिये।

नित्य प्रलय–सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो सभी वस्तुएँ क्षण क्षण में उत्पन्न होती रहती हैं और तत्क्षण प्रलय को प्राप्त होती रहती हैं। कूए में पानी भरा रहता है, स्थूल दृष्टि वाले यही समझते हैं। ऐसे ही सदा कूए में एक ही जल भरा रहता होगा, किंतु बात ऐसी नहीं है। कूए में पानी के स्रोत आते रहते हैं, उनमें से अनवरत नवीन नवीन जल निकलता रहता है और पुराना जल वाष्प बनकर या लोगों द्वारा निकाला जाकर व्यय होता रहता है। एक बालक उत्पन्न होता है। जिस समय उदर से बाहर निकला उसी क्षण उसके सब परमाणु बदल जाते हैं और प्रतिक्षण नये बनते रहते हैं पुराने विलीन हो जाते हैं। वह क्षण क्षण में बढ़ता है। बढ़ना क्या है पुराने परमाणुओं का नाश होना नये परमाणुओं का आना। शिशु से पौगण्ड होता है तब लोग समझते हैं हाँ बड़ा हुआ, किशोर होता है तब दूसरे लोग समझते हैं हाँ बहुत बड़ा हुआ फिर दाढ़ी मूँछ आती है, बाल सफेद होते हैं। बूढ़ा होता है। हम कब बढ़ते हैं इसका अनुभव हमें स्वयं नहीं होता। हम समझते हैं जैसे हम पहिले थे वैसे ही अब हैं, किन्तु यह भ्रममात्र है। एक सा तो कोई एक क्षण भी नहीं रहता। संसार ही परिवर्तन शील है परिवर्तन का ही नाम प्रलय है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी की क्षण क्षण में नित्य ही प्रलय होती है नित्य ही नयी सृष्टि होती रहती है। उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम धारा प्रवाह रूप से चलता ही रहता है। केवल आत्मा में परिवर्तन नहीं होता वह तो एक रस नित्य और अपरिवर्तन शील है, शेष सभी परिवर्तित होते रहते हैं। नदी के प्रवाह की भाँति दीपक की शिखा के भाँति परिणामी पदार्थों की

क्षण क्षण में परिवर्तित होने वाली दशाएँ उनके पलपल मे होने वाले जन्म और नाश की कारण बतायी हैं। सभी के शरीर प्रतिक्षण बनते बिगडते रहते हैं यह काल भगवान् का ही स्वरूप है। इसका न आदि है न अन्त यह अनादि अनन्त है। जैसे आकाश में चलने वाले ताराओं की गति दिखायी नहीं देती, इसी प्रकार काल के कारण प्रतिक्षण होने वाला परिवर्तन प्राणियों को दृष्टिगोचर नहीं होता। नहीं तो संसार की समस्त वस्तुएँ प्रतिक्षण विनाश हो रही हैं उनके स्थान में वैसे ही नयी बनती जा रहीं हैं। यह अत्यंत सक्षेप में मैंने नित्य प्रलय का वर्णन किया अब आप नैमित्तिक प्रलय के सम्बन्ध मे सुनिये।'

नैमित्तिक प्रलय—"नैमित्तिक प्रलय उसे कहते हैं, जो किसी निमित्त से होता है। जैसे ब्रह्माजी का एक दिन हो गया। जब उनकी रात्रि होती है, तो वे शेषशायी नारायण में लीन हो कर सो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर फिर इस त्रिलोकी की सृष्टि करते हैं। जब ये चारों युग (जिनके वर्षों की संख्याओं को मैं पीछे बार चार बता चुका हूँ) एक सहस्र बार बीत जाते हैं, तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है। इस एक दिन मे चौदह मनु तथा चौदह इन्द्रादि बदल जाते हैं। फिर उतनी ही बडी ब्रह्माजी की प्रलय रात्रि होती है। उस समय ब्रह्माजी सब जीवों को अपने उदर में रखकर सो जाते हैं। सृष्टि का समस्त काय बन्द हो जाता है। जैसे दुकानदार रात्रि में दुकान की समस्त सामग्री को भीतर रखकर ताला बन्द करके सो जाता है। उस समय बिक्री का कोई कार्य नहीं होता। प्रात काल हुआ फिर दुकान को ज्यों की त्यों सजा देता है। जहाँ कल आटा रखा था वहीं आज आटा रख देगा। दाल, चावल, मिरच मसाले सबको यथा स्थान सजा देगा। कल जितना बिका था उसी में से फिर बेचने लगेगा। इसी प्रकार कल्प की प्रलय होने पर सब जीव अपने अपने कर्मों को लिये

हुए चुपचाप पड़े रहेंगे। दूसरे कल्प के आरम्भ होते ही पूर्व कर्मानुसार पुनः सृष्टि के काय में प्रवृत्त हो जायँगे। इस नैमित्तिक प्रलय में भूः भुवः और स्वः इन तीनों ही लोकों की प्रलय होती है। जन, तप और सत्य ये लोक बच जाते हैं। यह नैमित्तिक प्रलय जैसे हमारे दिन में होती है वैसे ही ब्रह्माजी के दिन को निमित्त मानकर हुआ करती है। ब्रह्माजी के शयन करने के निमित्त से होती है, अतः नैमित्तिक प्रलय कहाती है। अब प्राकृतिक प्रलय को सुनिये।

प्राकृत प्रलय—"यह सृष्टि अव्यक्त प्रकृति से आरम्भ होती है। तभी विश्व ब्रह्माण्ड की रचना होती है। प्रकृति में जब विकृति होती है तब महत्तत्व, अहङ्कार, शब्द, रूप, रस, गन्ध स्पर्श ये सात प्रकृतियाँ हो जाती हैं। इन्हीं के भूतों के संघात रूप ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। जब यह ब्रह्माण्ड पुनः अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है, तो उसे प्राकृत प्रलय कहते है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह प्राकृतिक प्रलय कब होती है?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! मैं पहिले कई बार बता चुका हूँ, कि मनुष्यों के ३६० दिनों का एक वर्ष होता है, किंतु देवताओं के ऐसे ३६० दिनों का उनका वर्ष होता है। उसे दिव्य वर्ष कहते हैं। बारह सहस्र दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। अर्थात् जब देवताओं के बारह सहस्र वर्ष बीत जाते हैं तब सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ये चारों युग एक बार बीतते हैं। जब ऐसी चतुर्युगी सहस्र बार बीत जाती हैं, तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है, उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। ऐसे ३६० दिनों से ब्रह्माजी का एक वर्ष होता है। उसे ब्राह्म वर्ष कहते हैं। एक ब्रह्माजी के वर्ष में तीन सौ साठ बार नैमित्तिक प्रलय होती है। जिनमें तीनों लोक विलीन हो जाते हैं। ब्रह्माजी की पूर्ण आयु सौ

वर्ष की होती है। ब्रह्माजी के प्रथम पचास वर्षों को पूर्वार्द्ध कहते हैं और पचास से आगे सौ तक दूसरे पचास वर्षों को परार्द्ध कहते हैं। जब ब्रह्माजी के दो परार्द्ध अर्थात् सौ वर्ष बीत जाते हैं, तब ब्रह्माजी की आयु समाप्त हो जाती है। उस समय प्रलय हो जाती है, ब्रह्मा भगवान में लीन हो जाते हैं, फिर भगवान् की नाभि से कमल होता है, दूसरे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। इस प्रलय का नाम प्राकृत प्रलय है। क्योंकि सात प्रकृतियाँ शुद्ध प्रकृति में जाकर मिल जाती हैं। तीनों गुणों की साम्यावस्था हो जाती है। सृष्टि विषमता में ही है। साम्य में सृष्टि नहीं होती। ब्रह्माण्ड का कारण है विकृति या विषमता। जब विषमता ही नष्ट हो गयी तो ब्रह्माण्ड कहाँ रहेगा। इसी को प्रलय भी कहते हैं।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह महाप्रलय या प्राकृत प्रलय कैसे होती है, महाभाग! इसे हमें विस्तार से सुनाइये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! यही तो पुराणों में एक गूढ़ विषय है, इसका विस्तार तो बहुत हो जायगा, अतः मैं संक्षेप में ही इस विषय को समझाऊँगा।"

ब्रह्माजी के एक दिन में जो नैमित्तिक प्रलय होती है, उसमें तीन ही लोक नष्ट होते हैं, किंतु इस प्राकृत प्रलय में तो चौदह भुवन-सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अदृश्य हो जाता है। जब ब्रह्माजी की ही आयु समाप्त हो गयी तो ब्रह्माण्ड कैसे रह सकता है। उस समय कुछ नहीं रहता। सब अपने अपने कारणों में विलीन होते चलते हैं।

जब प्रलय का काल उपस्थित होता है, तब इन्द्र सावर्तक नामक मेघों को बुलाते हैं। और उनसे कहते हैं—"वर्षा करो।" ये महासावर्तक मेघ इन्हीं दिनों के लिये बन्द रहते हैं। जहाँ इन्द्र की आज्ञा हुई तहाँ ये बरसना आरम्भ करते हैं। हाथी की सूँड में से जैसी धारा निकले इतनी मोटी धाराओं से बरसते हैं। जब

बरसना आरम्भ करते हैं तो फिर बीच में रुकते नहीं। सौ वर्षों तक निरन्तर बरसते ही रहते हैं। अन्न का तो हो जाता है अभाव खाने के बिना प्राणी मरने लगते हैं भूख मिटाने को एक जीव दूसरे को खाने दौड़ता है। जीव ही जीवों का जीवन है। किंतु कहाँ तक बिना अन्न के निर्वाह चले। यह मनुष्य कृत कोप तो है नहीं जो किसी प्रकार अनुनय विनय करके बच सके। यह तो निर्दय क्रूर कालकृत कोप है। काल भगवान् किसी का भी शील संकोच नहीं करते। अन्न के अभाव में अतिवृष्टि होने के कारण सभी देह धारियों का अन्त हो जाता है। सातों समुद्र मिलकर एक हो जाते हैं सर्वत्र जल ही जल दिखायी देता है। पृथिवी जलमयी बन जाती है। जब जल के अतिरिक्त कुछ भी दिखायी नहीं देता, तब वृष्टि बन्द होती है। अब सूर्यदेव जी की बारी आती है। जैसे वृष्टि के लिये सांवर्तक मेघ रहते हैं, वैसे ही सूर्य की भी कुछ तीक्ष्ण किरणें रहती हैं। वे सूर्य की परम प्रचण्ड किरणें एकार्णव बने जगत् के जल को शोषती हैं। सृष्टि में तो यह नियम रहता है, कि सूर्य अपनी किरणों से जिस जल को शोषते हैं, उसे वर्षा के दिनों में वृष्टि के रूप में बरसा देते हैं, किन्तु महाप्रलय के समय यह नियम नहीं रहता। सूर्य सम्पूर्ण जल को सोखते तो जाते हैं, किंतु उसे वृष्टि के रूप में छोड़ते नहीं। जहाँ भी सूर्य आर्द्रता देखते हैं वहीं के सम्पूर्ण जलको निर्दयता पूर्वक खींच लेते हैं। ये समुद्र, शरीर तथा पृथिवी जल के द्वारा ही स्थित हैं, जब सब में से जलांश शोष लिया जायगा तब सूखा सूखा निर्जीव पदार्थ रह जायगा। उसी समय प्रचण्ड वायु चलेगी और शेषजी के मुख से संवर्तक नामक अग्नि उत्पन्न होगी। वह अग्नि वायु की सहायता से सबको जला डालेगी। अति वृष्टि से पृथिवी तो पहिले ही जन शून्य बन जायगी। कोई सड़ी गली वस्तु रह भी जायगी उसे सूर्य अपनी किरणों से

शोप लेंगे। संवर्तक अग्नि सबको जला देगी। नीचे की तल अतल आदि भू विवरों को भी वह प्रलयाग्नि भस्मसात् कर देगी। जैसे गोबर का कंडा है उसे जला दो तो उसमें केवल भस्म ही रह जायगी जो फूँक मारने से उड़ जायगी। ऐसे ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सूर्य और अग्नि की ज्वालाओं से जलकर भस्म हो जायगा। अब आकाश मंडल में अग्नि का धूआँ और पवन धूलि ये दो वस्तुएँ रह जायँगीं। जैसे संवर्तक मेघ बरसे थे संवर्तक अग्नि की लपटें उठी थीं उसी प्रकार संवर्तक वायु चलेगी। सौ वर्षों तक अन्धाधुन्ध आँधी चलती रहेगी। उस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वह धूलि और धूआँ यही भर जायगा। फिर सौ वर्षों तक अनेकों प्रकार के चित्र विचित्र मेघ वर्षा करते हुए भयंकर गर्जन तर्जन करते रहेंगे। उस समय समस्त संसार जलमय हो जायगा। अब यहाँ से प्रलय आरम्भ होगी।

जल के नीचे किसी न किसी रूप में जो जली हुई राख थी वही पृथिवी तो रही ही आवेगी, किन्तु उसमें सत्व कुछ भी न रहेगा। फिर भी उसमें राख की गन्ध तो रहेगी ही। उस गन्ध को जल अपने में मिला लेगा। जिसका गुण नष्ट हो गया मानों उसकी मृत्यु हो गयी। जब पृथिवी गन्ध गुण से हीन हो गयी तब उसकी मृत्यु हो गयी। अब रह गया शेष जल। जल के रस को तेज पी जायगा। जब रस ही नहीं तो जल का अस्तित्व कहाँ रहा। जल भी समाप्त हो गया। तेज में जो रूप गुण है उसे वायु शोप लेगी। जब तेज रूप अपने गुण रूप से रहित होता है तो वायु में विलीन हो जाता है। अब वायु का जो स्पर्श गुण है उसे आकाश हर लेता है, स्पर्शहीन वायु आकाश में लीन हो जाता है। अब पंचभूतों में केवल आकाश शेष रह गया। आकाश का जो शब्द गुण है उसे अहंकार हर लेता है, शब्द हीन आकाश तामस अहङ्कार में विलीन हो जाता है। क्योंकि पृथिवी, जल,

तेज, वायु और आकाश इन पंचभूतों की उत्पत्ति तामस अहंकार से ही होती है, यह सिद्धान्त कि कार्य कारण में विलीन होता है। इन्द्रियाँ राजस अहङ्कार से उत्पन्न होती हैं, अतः वे अपनी वृत्तियों सहित राजस अहङ्कार में विलीन हो जाती हैं। तामस राजस में मिल जाता है। सात्विक अहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवों की उत्पत्ति होती है। वे सब देवता सात्विक अहङ्कार में विलीन हो जाते हैं। तामस राजस और सात्विक अहङ्कार मिल कर एक हो जाता है। इस प्रकार यह त्रिविध अहङ्कार को महत्तत्व ग्रास लेता है। महत्तत्व की उत्पत्ति सत्व,रज और तम इन तीनों गुणों के क्षोभ होने से हुई थी। प्रकृति की प्रथम विकृति महत्तत्व ही है। उस महत्तत्व को सत्वादि गुण निगल जाते हैं। तीनों गुण जब साम्यावस्था में प्राप्त हो जाते हैं वही अव्याकृत है। काल की प्रेरणा से वह अव्याकृत गुणों को ग्रस लेता है। वह अव्यक्त, अनादि, अनन्त, नित्य, सबका कारण और अविनाशी है। काल के ही कारण घड़ी, पल, प्रहर दिन तथा रात्रि आदि विभाग होते हैं। उस समय अव्याकृत में किसी भी प्रकार के कालकृत परिणामादि विकार नहीं होते।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! ऐसा प्रलय क्यों होता है ?"

सूतजीने हँसकर कहा—"महाराज इसलिये होता है कि संसार के सभी पदार्थ क्षण भंगुर हैं, नाशवान् हैं। परिणामी हैं। जब पुरुष और प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियाँ काल से तिरस्कृत हो जाती हैं अर्थात् सबका समय समाप्त हो जाता है, ब्रह्माजी की आयु पूरी हो जाती है। सभी शक्तियाँ अपने कारण में लय होने को विवश हो जाती हैं, तब आप से आप प्रलय होने लगता है। तब केवल जगत् का मूलभूत तत्व अव्यक्त ही शेष रह जाता है। उस समय वाणी आदि बाह्य करण, मन आदि अन्तःकरण सत्व, रज और तम ये तीनों गुण महत्तत्वादि विकार, प्राण,इन्द्रिय

और उनके अधिष्ठातृदेव तथा यह सम्पूर्ण लोक रचना कुछ भी नहीं रहती सबका लोप हो जाता है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचभूत, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों दशायें तथा सूर्य चन्द्रादि कुछ भी नहीं रहते। जैसे गाढ निद्रा में सोया हुआ पुरुष शून्य के समान पड़ा रहता है वैसे ही सबको लीन करके एकमात्र अव्यक्त कहो प्रकृति कहो वही शेष रह जाती है। इसीलिये इसका नाम प्राकृत प्रलय है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! नित्य, नैमित्तिक तथा प्राकृत प्रलय के सम्बन्ध में तो हमने सुन लिया, अब कृपया आत्यंतिक प्रलय के सम्बन्ध में हमें और समझाइये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! नित्य, नैमित्तिक तथा प्राकृत प्रलय तो सीमित काल के लिये होती है काल पाकर फिर ज्यों की त्यों वस्तुएँ बन जाती है, फिर वैसी की वैसी सृष्टि हो जाती है। आत्यंतिक पलय यह है, जो एक बार प्रलय हो जाय फिर कभी हो ही नहीं। सदा के लिये प्रलय हो जाय। उसे मोक्ष भी कहते हैं। कुछ लोगों का मत है, कि यह जगत न कभी उत्पन्न हुआ न है न आगे कभी होगा। भ्रमवश इस जगत की प्रतीति होती है, जहाँ यह भ्रम नष्ट हुआ तहाँ यह संसार अपने आप सदा के लिये विलीन हो जायगा। विलीन हो जाना भी एक उपचार मात्र है, विलीन तो तब हो जब पहिले कुछ हो। यह तो कभी हुआ ही नहीं। जैसे दूर से टेढी मेढी रस्सी सर्प के समान दिखायी दी। कोई उसे सर्प समझकर भयभीत हो गया। अब उसे सर्प मानकर डरा हुआ है। किसी ने दीपक लाकर दिखा दिया टेढी मेढी रस्सी पड़ी रह गयी, सर्प उसमें से भाग गया। देखने वाला निर्भय हो गया। 'सर्प उसमें से भाग गया' यह कहना उपचार मात्र है। वास्तव में तो उस टेढी रस्सी में न पहिले कभी सर्प था, न अब है न कभी उसमें सर्प हो ही सकता है। उसे भ्रमवश सर्प की प्रतीत

होती है, ज्ञान रूपी प्रकाश के आने पर उसे स्वतः अनुभव हो गया —"अरे, यह तो रस्सी थी उसे मिथ्या भ्रम था।" ऐसा ज्ञान होते ही उस रस्सी में से सर्प सदा के लिये चला गया। अर्थात जहाँ रज्जु में सर्प भास रहा था वहाँ रज्जु रह गयी। इसी प्रकार इस जगत का अधिष्ठान ब्रह्म आत्मा है। बुद्धि, इन्द्रिय और विषयों के रूप में वही प्रतीत हो रहा है। जो वस्तु आदि अन्त वाली है वह मध्य में ही सत्य नहीं हो सकती है। क्योंकि वह दृश्य है। दृश्य किसी अधिष्ठान में ही रहेगा। अधिष्ठान तो सत्य है, किंतु वह दृश्य सत्य नहीं और उस दृश्य की अधिष्ठान से पृथक् सत्ता भी नहीं।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यह बात हमारी समझ में आयी नहीं, कृपया इसे स्पष्ट समझा दीजिये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! यों समझिये कुंडल हैं, कंकण हैं, ये तो दृश्य हैं इनका आदि भी है अन्त भी है। इनका अधिष्ठान है सुवर्ण। सुवर्ण के बिना ये बन नहीं सकते। आज कुंडल बना है, कल उसे तोड़कर कंकण बना लिया, परसों उसे तुड़वाकर हार बनवा लिया। ये आज बनने और बिगड़ने वाले दृश्य हैं, वे मिथ्या हैं। आदि में कभी नहीं थे अन्त में भी नहीं रहे। मध्य में जो प्रतीति हुई, वह मिथ्या थी भ्रम था, किन्तु इन कटक कुंडल हार आदि का अधिष्ठान सुवर्ण है वह नित्य है। जब उसमें कटक कुंडल थे तब भी सुवर्ण था तोड़ दिया तब भी सुवर्ण शेष रह गया, बनने के पहिले भी सुवर्ण ही था। अध्यस्त वस्तु की सत्ता अधिष्ठान से पृथक नहीं होती। किन्तु अधिष्ठान या कारण उससे सर्वथा पृथक् होता है कुंडल कनक से पृथक् नहीं, किन्तु कनक कुंडल से सर्वथा पृथक् है। रज्जु में दीखने वाला सर्प रज्जु से पृथक् नहीं, किन्तु रज्जु सर्प से सर्वथा पृथक् है। सीप में दीखने वाली चाँदी सीप से पृथक् नहीं किन्तु सीप चाँदी

से सर्वथा पृथक् है। मिट्टी के बने घड़े आदि पात्र मिट्टी से पृथक् नहीं, किन्तु मिट्टी घड़ा नहीं।

इसे दूसरी भाँति से यों समझो कि दीपक की ज्योति ही आँखों में प्रवेश करके देखने की शक्ति देती है, दीपक में जो दिखाने की शक्ति है वह भी तेज है। जितने रूप हैं वे भी सूर्य के तेज से ही आते हैं। अर्थात् दीपक, नेत्र और रूप ये तीनों ही तेज से भिन्न नहीं हैं। तेज ही द्रष्टा है तेज ही दृश्य है और तेज ही दिखाने वाले हैं, फिर भी वह तेज दीपक, नेत्र और रूप इन तीनों से भिन्न है। इसी प्रकार अन्तःकरण वाह्यकरण और तन्मात्राओं का अधिष्ठान ज्ञान स्वरूप ब्रह्म ही है। ब्रह्म में ही इनकी प्रतीति हो रही है, किन्तु ब्रह्म बुद्धि नहीं, इन्द्रिय नहीं और तन्मात्रा भी नहीं। इन सब से सर्वथा पृथक् है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ये जो जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थायें हैं और इनके विश्व, तैजस और प्राज्ञ ये तीन अभिमानी हैं ये किनमें हैं। ये तीन अवस्थायें किनकी हैं, क्या ब्रह्म में यह त्रित्व सत्य है?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! ब्रह्म तो न कभी सोता है न उसको कभी स्वप्न होता है, वह तो अखंड एक रस परिपूर्ण और सदा जाग्रत रहता है। ये जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थायें तो बुद्धि की ही कही गयी हैं। इन अवस्थाओं के अभिमानी जो विश्व तेजस और प्राज्ञ रूप से तीन कहे गये हैं वे भी प्रत्यक् आत्मा अर्थात् अन्तरात्मा में हैं, ब्रह्म में तो यह नानात्व केवल मायामात्र ही है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! नानात्व न हो तो ये इतने पदार्थ दीखते क्यों हैं। महाभाग! कारण से कार्य होता है। आप कपड़े को सत्य न भी मानें किन्तु उसका कारण जो सूत है उसे तो आप को सत्य मानना ही होगा। घड़े सकोरे आदि को सत्य न

माने मिट्टी को तो सत्य मानना ही होगा। जब सबके कारण सत्य हैं, तो उनसे होने वाला कार्य भी सत्य होगा ही।

सूतजी ने कहा—"महाराज! सामान्यतया जगत् में जितने भी सावयव पदार्थ हैं, उनके कारण रूप अवयव सत्य माने गये हैं। जैसे सूत अवयव है और वस्त्र अवयवी है। आप कहीं देखें आप को ऐसा वस्त्र कहीं भी न मिलेगा जिसमें सूत्र न हो। सूत से पृथक् वस्त्र रह ही नहीं सकता. किन्तु वस्त्र से पृथक् सूत्र सर्वत्र दिखायी देगा। इसी प्रकार मिट्टी के बिना घड़े सकोरे न मिलेंगे घड़े सकोर से पृथक् मिट्टी बहुत मिलेगी। कहीं मिट्टी अपने शुद्ध रूप में दिखायी देती है, कहीं घड़े के रूप में। कहीं सूत शुद्ध सूत रूप में दिखायी देता है कहीं कपड़े के रूप में। कपड़ा होने पर भी सूत्र कहीं चले नहीं जाते। सूत्रों को पृथक कर दो फिर उन्हें कोई कपड़ा नहीं कहेगा। आकाश में मेघ रहते हैं तब भी वह आकाश शुद्ध है नहीं रहते हैं तब भी शुद्ध है। कभी आकाश में मेघ दिखायी देते हैं कभी नहीं भी देते। आकाश की उनके दिखायी देने न देने में कोई हानि नहीं। इसी प्रकार ब्रह्म में यह सावयव संसार उत्पत्ति के प्रलय के क्रम के कभी होता है कभी नहीं होता।"

शौनकजी ने कहा—"तब ये जगत् के जितने कारण हैं वे सत्य ही हुए?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! सामान्य और विशेष अर्थात् कारण और कार्य रूप से जो भेद की उपलब्धि होती है। वह परस्पर में एक दूसरे से आश्रित है। अर्थात् कारण के बिना कार्य नहीं और कार्य कारण के बिना होता नहीं। किसी कार्य का आरम्भ होगा तो उसका कारण भी होगा। जगत् में कार्य और कारण अन्योन्याश्रित हैं आदि अन्त वाले हैं अतः भ्रमरूप ही हैं। क्योंकि जिसका आदि और अन्त है वही अनित्य है जिसका

आदि है और अन्त भी है यदि वह बीच में दीखता भी है तो इसकी प्रतीति भ्रमवश ही समझना चाहिये। इसी प्रकार इस आदि अन्त वाले प्रपञ्च विकार की प्रतीति होती है, फिर भी इसकी सत्ता अन्तरात्मा के अतिरिक्त अणुमात्र भी नहीं हो सकती। यदि इस जगत् की पृथक् सत्ता मानी जाय, तो बड़ा अनर्थ होगा।'

शौनकजी ने कहा—"क्या अनर्थ होगा सूतजी।"

सूतजी ने कहा—"यही कि फिर जैसे चैतन्य स्वरूप आत्मा है वैसे ही चैतन्य रूप यह प्रपञ्च भी पृथक हो जायगा। आत्मा में अनेकता है नहीं।"

शौनकजी ने कहा— मान लो सूतजी! आत्मा में अनेकता हो भी तो इसमें हानि क्या है?'

सूतजी बोले—"अब इसे तो महाराज! आप ही समझो। यदि घड़े का आकाश, घर का आकाश महाकाश से भिन्न है, यदि आकाश में स्थित सूर्य और जल में प्रतिबिम्ब रूप से दिखाई देने वाला सूर्य भिन्न है यदि शरीर के भीतर रहने वाला वायु और बाहर विचरण करने वाली वायु भिन्न है, तब तो यह दृश्य प्रपञ्च और आत्मा भिन्न भिन्न माने भी जा सकते हैं। तब तो नानात्व संभव भी है, किन्तु घटाकाश और महाकाश को कौन बुद्धिमान भिन्न भिन्न बतावेगा।"

शौनकजी ने कहा—'सूतजी! परब्रह्म परमात्मा को भी तो वेदशास्त्र अनेक रूपों से वर्णन करते हैं। उनके भी तो भिन्न भिन्न अवतार और स्वरूप मान गये हैं।"

सूतजी ने कहा—'महाराज! इन सब अनेकताओं में भी एकता निहित है। जैसे काली के उपासक कहते हैं, हमारी काली एक है और वह सर्व श्रेष्ठ है शिव के उपासक कहते हैं, हमारे शिव तो एक अद्वय हैं और वे सब श्रेष्ठ हैं, गणपति के उपासक

कहते हैं हमारे गणपति सबसे श्रेष्ठ हैं और एक ही हैं। इसी प्रकार, वैष्णव सौर तथा शाक्त आदि सभी उन्हें एक और सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। यदि ये भिन्न भिन्न हैं तब तो अनेक हो गये, किन्तु सभी उन्हें अद्वय कहते हैं, इससे सिद्ध हुआ एक ही सर्वश्रेष्ठ सत्ता है, जिसे रुचि वैचित्र्य से कोई शिव कहते हैं कोई शक्ति कोई सूर्य और कोई गणपति विष्णु। सुवर्ण एक है कोई उसका हार बनाकर उसका हार नाम रखकर प्यार करता है कोई कंकण नाम रखकर प्यार करता है मूल में वस्तु वही एक सुवर्ण है। नाम और आकृति भेद से उनके संकेत पृथक हो जाते हैं, मूल वस्तु एक ही है। इसी प्रकार वेदविद् पुरुष भगवान् अधोक्षज की लौकिक और वैदिक वाक्यों द्वारा भाँति भाँति की व्याख्या किया करते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"जब सूतजी! एक ही तत्व है, तो ज्ञान फिर किसके होगा। जब बन्धन ही सत्य नहीं तो मुक्ति होगी किसकी?"

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और बोले—"भगवन्! अब इसका क्या उत्तर मैं दूँ। अच्छा यह बताइये मेघ किससे उत्पन्न होते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"यह तो सभी जानते हैं आठ महीने सूर्य नारायण अपनी किरणों से समुद्र, कूप, नदी तथा सभी प्राणियों के शरीर में से जल चुराते रहते हैं। उन्हीं के मेघ बन जाते हैं। वर्षा में वे ही मेघ बनकर बरस जाते हैं।"

सूतजी ने कहा—"तो इससे यही सिद्ध हुआ न कि मेघ सूर्य से बनते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"सूर्य से तो बनते ही हैं।"

सूतजी ने कहा—"अच्छा! प्रकाश न हो तो आप मेघों को देख सकते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"प्रकाश न हो, तो सूर्य को क्या हम किसी को भी नहीं देख सकते।"

सूतजी बोले—"तो इससे यह सिद्ध हुआ कि सूर्य से उत्पन्न मेघ सूर्य के ही द्वारा देखे जा सकते हैं।"

शौनकजी बोले—"निःसन्देह यही बात है।"

सूतजी बोले—"अच्छा, सूर्य न हो तो मेघ दिखाई दे सकते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सब वस्तुओं के प्रकाशक तो सूर्य ही हैं। आकाश में मेघ छा रहे हैं यह भी सूर्य के ही प्रकाश से जाना जाता है।"

सूतजी ने पूछा—"अच्छा, नेत्रों को देखने की शक्ति कौन देते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"नेत्र गोलकों के प्रकाशक भी वे ही सूर्य हैं।"

सूतजी ने कहा—"अच्छा, तो बताइये, सूर्य से उत्पन्न, सूर्य द्वारा प्रकाशित मेघ सूर्य के अंश भूत नेत्र के लिये सूर्य दर्शन में कभी कभी प्रति बन्धक क्यों हो जाते हैं? जब घनघोर घटायें छा जाती हैं, तब हमें नेत्रों से सूर्य दिखायी नहीं देते। मेघ उन्हें आच्छादित कर लेते हैं सूर्य से ही उत्पन्न मेघ भला सूर्य को क्या ढक सकते हैं, किन्तु ऐसी प्रतीत होने लगती है। है। इसी प्रकार अहंकार ब्रह्म का ही कार्य है ब्रह्म से ही प्रकाशितःहोता है, वह अहंकार ब्रह्म के अंशभूत आत्मा के लिये ब्रह्म-दर्शन में प्रतिबन्धक हो जाता है।"

शौनकजी ने कहा—"तो सूतजी! यह प्रतिबन्ध हटे कैसे ब्रह्म-दर्शन हो किस प्रकार?"

सूतजी ने कहा—"जब सूर्य स्वयं ही अपने से उत्पन्न मेघों को चीर फाड़कर प्रकाशित हो जाते हैं तब सूर्य से ही प्रकाश पाने वाले नेत्र अपने स्वरूप भूत सूर्य को स्वयं ही देख लेते हैं। इसी प्रकार जब भगवान् स्वयं कृपा करके जीव के अज्ञानान्धकार को दूर कर देते हैं। आत्मा की उपाधि रूप जो यह मिथ्या अहंकार है जब नष्ट हो जाता है तब उसे अपने यथार्थ रूप की स्मृति हो जाती है। जैसे कंठ में पड़े मोती के हार को कोई भूल गया, इधर उधर खोजता फिरता है। प्रकाश में उसे दीख गया तो उसका सब शोक नष्ट हो जाता है। मोती का हार कहीं चला नहीं गया था, न देखते समय कहीं से आ गया। उसे हार की प्राप्ति नहीं हुई। प्राप्ति तो तब होती जब वह कहीं अन्यत्र गिर गया होता। खोने से पहिले भी कंठ में था, जब उसे पुनः प्राप्त हुआ तब भी कंठ में ही था। हार जहाँ था वहाँ का वहीं रहा, केवल उसने भ्रम वश खोया और प्राप्त हुआ मान लिया था। इसी प्रकार ब्रह्म की कभी अप्राप्ति है ही नहीं। वह सर्वथा सब काल में प्राप्त है। जिस समय विवेक रूप खड्ग से यह जीव अपने अहंकार रूप माया बन्धन को काटकर ब्रह्मात्मभाव से स्थित हो जाता है, उस समय 'अहं' कहीं भाग नहीं जाता है। अहं ही ब्रह्म बन जाता है। बन क्या जाता है भासने लगता है। इसी अवस्था का नाम आत्यंतिक प्रलय है। उस समय ज्ञानी की दृष्टि में यह जगत् रहता ही नहीं केवल ब्रह्म ही ब्रह्म दिखायी देता है। ज्ञान हुआ, तो मानों जगत् की प्रलय हो गयी। सब प्रपञ्च ही नष्ट हो गया। ज्ञानी की मुक्ति हुई मानों सब की मुक्ति हो गयी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार मेरे गुरुदेव भगवान् व्यास नन्दन ने महाराज परीक्षित् को नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक इन चारों प्रकार की प्रलयों का रहस्य समझा दिया और अन्त में मेघ गम्भीर वाणी में बोले—"राजन्! यह

सर्वान्तर्यामी प्रभु की क्रीड़ा है, लीला है विनोद है। अत्यन्त संक्षेप में मैंने इस प्रलय रहस्य को तुम्हें बताया यदि विस्तार से कोई इन सब लीलाओं का वर्णन करना चाहे, तो मनुष्यों की तो बात ही क्या कमलयोनि भगवान् ब्रह्मा भी अपनी पूरी आयु में वर्णन नहीं कर सकते।"

महाराज परीक्षित् ने कहा—"भगवान्! यह संसार सागर तो बडा ही दुस्तर है। इसे किस साधन से पार किया जा सकता है। मेरे तो आज सात दिन पूरे भी हो गये ?"

इस पर मेरे गुरुदेव भगवान् शुक ने कहा—"राजन्! तुम क्यों घबड़ाते हो, तुम तो पार हो ही गये। जिस प्रकार कोई गरमी से व्याप्त हो और उसे केले की जड का रस पिला दो, तो उसकी सब गरमी शान्त हो जाती है उसी प्रकार नाना भाँति के दुःख रूप दावानल से सन्तप्त पुरुषों के लिये भगवान् वासुदेव की लीला कथा रूपी रस के अतिरिक्त दूसरी कोई रामबाण औषधि है ही नहीं। सो उस रस का तो मैंने तुम्हें आकण्ठ पान करा ही दिया है। संसार सागर उन्हीं के लिये दुस्तर है जिनके पास दृढ़तर पोत न हो। जिन के पास कथा कीर्तन रूप पोत है वे तो सुगमता से इस संसार सागर को तर जायँगे। इसलिये राजन्! भगवान् की कथाओं को भागवत चरितों को सभी लोगों को श्रद्धापूर्वक श्रवण करना चाहिये। इनके अतिरिक्त संसार को पार करने का कोई अन्य उपाय है ही नहीं। भागवती कथा बड़े भाग्य से प्राप्त होती है।"

राजा ने पूछा—"भगवन्! यह कथा आप को किनसे प्राप्त हुई ?"

इस पर मेरे गुरुदेव बोले—"राजन्! मैं इस कथा की परम्परा पीछे आपको बता चुका हूँ, फिर भी उपसंहार में बताये देता हूँ। समस्त ज्ञान के भंडार भगवान् नारायण ही हैं। उनके

उच्छ्वासका ही नाम वेद है। सदा घूमते रहने वाले एक स्थान पर स्थिर होकर न बैठने वाले मन के प्रतीक श्री नारद जी को समस्त ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा रहती है। नारद जी ने पहिले ब्रह्मा जी से भागवत ज्ञान प्राप्त किया। किसी कल्प में वे घूमते घामते बदरिकाश्रम में गये। वहाँ नारायण ऋषि तपस्या कर रहे थे। नारदजी ने उनसे प्रार्थना की—"भगवन् ! मुझे भागवत ज्ञान दे दो।"

नारदजी की प्रार्थना से प्रभु परम प्रसन्न हुए और उन्हें इस भागवत पुराण संहिता को दिया। नारदजी घूमते घामते मेरे पिता के आश्रम के समीप चले गये। बदरिकाश्रम में ही तो मेरे पिता जी रहते थे। मेरे पिता भगवान् व्यास—की प्रार्थना पर नारद जी ने यह भागवत मेरे पिता को पढ़ायी। मेरे पिता ने इसका व्यास करके मुझ को पढ़ाया। मैंने आप को सुनायी और आप के साथ ही साथ (मेरी ओर संकेत करके बोले) इस सूत लोमहर्षण पुत्र उग्रश्रवा ने सुनी है यह इस वेदानुकूल संहिता को नैमिषारण्य में जाकर शौनकादि अट्ठासी सहस्र मुनियों को—जो नैमिषारण्य-क्षेत्र में रह कर दीर्घकालीन तप कर रहे हैं उनको—सुनावेगा। शौनकादि मुनि इससे भागवत का प्रश्न करेंगे, तब जैसी इसने मेरे मुख से सुनी है वैसी ही सब महर्षियों को सुनावेगा।"

सूतजी कह रहे हैं—"सो, मुनियो ! मेरे गुरुदेव ने तो महाराज परीक्षित् को कथा सुनाते ही समय संकेत कर दिया था, कि शौनकादि मुनि इस सूत से प्रश्न करेंगे। मैं आपके यज्ञ में आया। आपने मुझसे भागवत सम्बन्धी प्रश्न किये। उनका मैंने यथामत जैसा कुछ मुझसे बना आपके प्रश्नों का उत्तर दे दिया। भूल होना मनुष्य से स्वाभाविक है। मुझसे भी भूल हुई होगी। मैं अपने सर्वज्ञ गुरुदेव के वचनों का यथावत व्याख्यान कर सका

हूँगा, किन्तु महर्षियो ! आप सब भी तो सर्वज्ञ हैं आप अपनी सर्वज्ञता से उसे सुधार लें ।"

यह सुनकर आश्चर्य के साथ शौनक जी ने कहा—"अजी, सूतजी ! यह क्या ? आपने तो क्षमा प्रार्थना करके कथा उपसंहार ही कर दिया महाभाग ! हमारी कथा से तृप्ति नहीं हुई हमें और भी कथा सुनाइये ।"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! आप की भागवत का कथाओं से कभी तृप्ति हो ही नहीं सकती। होनी भी न चाहिये, किन्तु मुझे आपकी सेवा करते करते इस एक ही परमपावन क्षेत्र में बहुत दिवस हो गये अब कुछ अन्य पुण्य क्षेत्रों में भगवतधामों में घूम फिर आऊँ। फिर आप जैसी आज्ञा करेंगे वैसा करूँगा, फिर कथा सुनाऊँगा।"

शौनक जी ने कहा—"अजी सूतजी ! अभी तो हमें स्तुतियाँ सुननी हैं, स्तोत्र, कवच, सृष्टि रहस्य, कर्म रहस्य, दार्शनिक विवेचन, योग, धर्म भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, जीव, जगत् तथा अन्यान्य विषयों के गूढ प्रश्न करने हैं, इन सबको हमें समझावें।

सूतजी ने कहा—"अजी, महाराज ! आप को क्या समझाना आप तो समझे समझाये बैठे हैं, लोक कल्याण के निमित्त आप मेरे मुख से स्वयं ही ज्ञान देकर कहाते हैं और स्वयं श्रोता बनकर सुनाते हैं। भगवन् ! मन एक स्थान पर अधिक रहते रहते ऊब जाता है इसलिये इसे इधर उधर पुण्य क्षेत्रों में दौड़ाकर थका लेना चाहिये। फिर बाह्यवृत्ति से क्लेश होगा सत्सग की इच्छा तीव्र होगी, तब पुनः आपके श्री चरणों मे आकर कथा वार्ता में कालक्षेप करूँगा। आपका श्रवण मेरे कल्याण के ही निमित्त है।"

शौनक जी ने कहा—"अच्छा इस कथा प्रसङ्ग को तो पूरा करो। महाराज परीक्षित् को सबसे अन्त मे भगवान् शुक ने

क्या उपदेश दिया। सातवें दिन तक्षक ने आकर राजा को काटा या नहीं। यह कथा तो आवश्यक है। इसे सुनने को हमें बड़ा कुतूहल हो रहा है।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज! अब मैं आपके इन ही प्रश्नों का उत्तर दूँगा। सब से अन्त में मेरे गुरुदेव ने राजा परीक्षित् को परमार्थ का उपदेश दिया। उसी को अब मैं कहता हूँ। यही भागवतरूपी दुग्ध का मक्खन है। इसे आप सब स्थिर चित्त से बड़े मनोयोग के साथ श्रवण करें।"

छप्पय

आत्यंतिक इक प्रलय मोक्षहू जाकूँ भाखें।
ज्ञानी निज पर भेद आतमामें नहिं राखें॥
होहि ज्ञान परिपूर्ण द्वैत सबरो नसि जावै।
जगको पुनि अस्तित्व रहे नहिँ ब्रह्म लखावै॥
छिन छिन पल पल में सकल, जग पदार्थ बदलत रहत।
जग प्रवाह लौ दीपसम, नित्य प्रलय ताकूँ कहत॥

—:*:—

परमार्थ विवेचन

(१३५२)

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशु बुद्धिमिमां जहि।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्व न नङ्क्ष्यसि ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ५ अ० २ श्लो०)

छप्पय

इतनी कथा सुनाइ कहें शुक नृप तैं मुनिवर।
कह्यो भागवत धर्म, मोक्षप्रद नृपवर सुखकर॥
'अहि काटे मरि जाउँ, भूप! जा भयकूँ त्यागो।
मोह नींदकूँ त्यागि ज्ञान बेला में जागो॥
अमर अजनमा आतमा, अजर एकरस नित रहत।
देह देह तें प्रकट है मरत जियत जन्मत रहत॥

जल तो शुद्ध है तृप्ति कारक है, तृषा नाशक है अधिक क्या कहें प्राणियों का जीवन ही है, किन्तु यदि उसमें भाँग मिल जाय, तो वही स्वरूप विस्मृति का कारण हो जाता है। उसे पान करके

---

* श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित्से कह रहे हैं—"राजन्! तुम इस पशुबुद्धिको त्याग दो कि "मैं मर जाऊँगा।" देह पहिले नहीं होती फिर उत्पन्न होती है इसीलिये नाश भी हो जाती है, तुम तो पहिले भी थे अब भी हो इसीलिये तुम नाश को भी प्राप्त न होगे।"

पुरुष मोहान्ध बन जाता है। इसी प्रकार आत्मा तो नित्य शुद्ध परिपूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप है। वही आत्म मायानिर्मित मन के संसर्ग से अनेक योनि में अपने को जन्मता मरता-सा अनुभव करता है। जो आत्माके और मायाके यथार्थ तत्वको जान लेता है, वह फिर संसारी बन्धनों में नहीं फँसता, वह तो स्व-स्वरूपमें स्थित रह कर परमानन्दका नित्य अनुभव करता रहता है।

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! चार प्रकार की प्रलय वर्णा का वर्णन करके मेरे गुरुदेव भगवान् शुक राजा परीचित से कहने लगे—"राजन्! मैंने जो आप को यह श्रीमद् भागवत सुनायी है, इसमें सर्वत्र, सब स्थानों में बारम्बार सर्वात्मा श्रीहरि का ही वर्णन किया जाता है। भागवत शास्त्रका अर्थ ही यह है कि भगवत् सम्बन्धी चर्चा हो। भगवत् सम्बन्धी जो भी वस्तुएँ हैं, भगवान् को जो भी अपना सर्वस्व समझते हैं, वे सभी भागवत कहलाते हैं। भागवत कहो, वैष्णव कहो, तदीय कहो सब एक ही बात है। यह सम्पूर्ण विश्व वैष्णव ही है, क्योंकि विष्णु के बिना किसी की सत्ता ही नहीं। उन्हीं विश्वात्मा विष्णु की रजोवृत्ति रूप प्रसन्नता से कमलासन भगवान् ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है और उन्हीं के तमोमय क्रोध से प्रलयकर्ता भगवान् रुद्र का प्रादुर्भाव होता है। मूल में वे एक ही विश्वात्मा विभु हैं।"

राजाने पूछा—तो प्रभो! अब मुझे क्या करना चाहिए।"

श्री शुक बोले—"राजन्! सर्व प्रथम तो तुम्हें चाहिये, कि मृत्यु का भय त्याग दो। मैं मर जाऊँगा, इस बात को सोचो ही मत।"

राजा ने कहा—'भगवन्! जो अवश्यम्भावी है, उसे कैसे भुलाया जा सकता है? जिसने जन्म लिया है, वह मरेगा भी अवश्य। मेरे पिता, पितामह प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह उनके भी पिता प्रपिता आदि सभी जन्मे और सभी की मृत्यु हुई इसी प्रकार मेरी भी मृत्यु होगी।"

अपनी बात पर बल देते हुए श्री शुक बोले—"राजन्! यही तो समझने की बात है। आप सावधान होकर विचार करें उत्पन्न कौन होता है। एक बट का बीज है, उससे अङ्कुर उत्पन्न हुआ अंकुर से फिर वृक्ष और वृक्ष से फिर बीज हो गया। बीज से फिर अङ्कुर इसप्रकार माता पिताके रज वीर्यसे शरीर उत्पन्न हुआ उस शरीर से और शरीर उत्पन्न हुए। शरीरसे तो शरीर की ही उत्पत्ति होती है। आत्मा तो अजर अमर अजन्मा और नित्य है उसमें तो जन्म और मरण सम्भव ही नहीं। तुम्हारा देह पहिले नहीं था तुम्हारे माता पिता के रजवीर्य से उत्पन्न हुआ। यह नष्ट हो सकता है। तुम तो इस शरीरके उत्पन्न होनेसे पूर्व ही आत्मरूप से अवस्थित थे और इस शरीर के नाश होने पर भी जैसे के तैसे बने रहोगे। जो जन्मा है वह अवश्य ही मरेगा। जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश भी अवश्यम्भावी है। देह तो मरणशील है ही। उसके लिये तुम्हें सोच करने की क्या आवश्यकता है। तुम देह तो हो नहीं आत्मा हो। अतः तुम नाश को भी प्राप्त न होगे।"

राजा ने कहा—"महाराज! सब लोग तो शरीर को ही आत्मा कहते हैं। अहं के माने लोग शरीर ही समझते हैं?"

बात पर बल देते हुए श्री शुक बोले—"राजन्! जो ऐसा समझते हैं, वे पशु हैं। पशु ही शरीरको आत्मा समझते हैं। नहीं तो शरीर से आत्मा सर्वथा पृथक है।"

राजा ने पूछा—कैसे पृथक है भगवन्। इसे तनिक खुलासा करके मुझे समझा दें।"

श्री शुक बोले—"राजन्। यह विषय तो तनिक सूक्ष्म है। इसे ध्यान पूर्वक समझो। सूखे सूखे काष्ठ हैं अग्नि जलने से वे जल रहे हैं। सर्व साधारण लोग कहते हैं अग्नि जल रही है, एक

काष्ठ में अग्नि व्याप्त है। लोग उसी को अग्नि कहते हैं। वास्तव में काष्ठ में अग्नि व्याप्त है काष्ठ अग्नि नहीं है, वह तो काष्ठ से सर्वथा पृथक है। एक लोहे का गोला है। अग्नि में देने से वह लाल हो गया है अग्नि के वर्ण का हो गया है, किन्तु वह अग्नि नहीं है, लोहा भिन्न है। कोयले को जला दिया अग्नि लगने से वह लाल हो गया। कोई कहता है अग्नि दे दो, तो लोग उस कोयले को उठा कर दे देते हैं। वास्तवमें वह कोयला अग्नि नहीं है, अग्नि उसमें व्याप्त है। इसी प्रकार शरीर भिन्न है आत्मा भिन्न है। शरीर जन्मता और मरता रहता है, आत्मा का तो न जन्म है न मरण है। तुम शरीर नहीं आत्मा हो। दृष्य नहीं दृष्टा हो। शरीर के नष्ट होने पर भी तुम नष्ट न होगे।"

राजा ने पूछा—"भगवन्! शरीर के मरने पर आत्मा की मृत्यु नहीं होती इसमें क्या प्रमाण है?"

हँस कर श्री शुक बोले—"राजन्! प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है। किसी आदमी की अँगरखी है, अँगरखी फटने पर वह आदमी तो नहीं फट जाता। किसी आदमी का घर है, घर के नष्ट होने पर घर वाला तो नष्ट नहीं होता, वह दूसरा घर बना लेता है, इसी प्रकार शरीरों के नष्ट होने पर उसका अभिमानी आत्मा तो नष्ट नहीं होता। दृष्टा कभी दृष्य नहीं होता। दीपक के प्रकाश में तुम चाहें पाप करो या पुण्य दीपक तुम्हें प्रकाश देता रहेगा। पाप पुण्य उसको स्पर्श न करेगा। दोष तो कर्ता को लगता है दृष्टा तो साक्षी मात्र है। स्वप्न में हम देखते हैं हमारा सिर कट गया है। यदि सिर ही दृष्टा होता तो कटते हुए सिर को वह कैसे देख सकता था। इससे सिद्ध होता है देखने वाला साक्षी दूसरा है, कटने वाला अङ्ग उससे सर्वथा पृथक है। जैसे स्वप्न का अभिमानी स्वप्न में सिर काटना आदि देखता है उसी प्रकार जाग्रत में भी रुग्णता, मृत्यु आदिको देखता है। व्यवहार

नें भी कहते हैं—"मेरे शरीर में पीड़ा है। मेरा पैर दुखता है, मेरी आँखे दुखने आगयीं। आज मेरा मन ठीक नहीं। मेरी बुद्धि उस समय बिगड़ गयी थी। इनसे भी यही सिद्ध होता है, कि शरीर, हाथ पैर, नाक, कान, मन तथा बुद्धि इनको मेरा कहने वाला इनसे पृथक है। देह आत्मा नहीं है। शरीरादि उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं आत्मा अजन्मा तथा अमर है।"

राजा ने कहा—"भगवन्! आत्मा भले ही अजन्मा अमर हो, किन्तु जीव तो जन्म लेता है और मरता भी है।

इस पर मेरे गुरुदेव भगवान् शुकने कहा—'राजन्! इस प्रश्न का तो मैं कई वार उत्तर दे चुका हूँ। इन भूत, इन्द्रिय, प्राण तथा मन आदि के अभिमानी का नाम जीव है। वह जीव आत्मा से भिन्न नहीं देह की उपाधि से अज्ञान वश भिन्न सा प्रतीत होता है। जैसे घड़े की उपाधि से घटाकाश को महाकाशसे पृथक समझते हैं। जहाँ घडा फूटा उसकी उपाधि की परिधि समाप्त हुई तहाँ घटा काश महा काश में मिल गया। मिला तो पहिले ही से था, बीच में व्यवधान था इसी प्रकार अज्ञान निवृत्त होने पर देह के नष्ट होने पर जीव फिर ब्रह्मरूप को प्राप्त हो जाता है।"

राजा ने पूछा—"फिर यह जीवात्मा देह को प्राप्त क्यों होता है? जब यह अनादि नित्य तथा शाश्वत है, तो नाशवान् अशाश्वत शरीरों में भोगों को क्यों भोगता है?"

भगवान् शुक बोले—"राजन्! यह सब माया के कार्य है। माया के वश होकर जीव जगत् की नाना योनियो में भटकता रहता है। आत्मा के लिये मन ही देह बनाता है, वही सत्व, रज तथा तम इन गुणों की तथा कर्मों को रचना करता है।"

राज ने पूछा—"यह मन जड़ है या चैतन्य? श्री शुक बोले—"चैतन्य स्वरूप तो एक आत्मा है मन तो जड है।"

राजा ने कहा—"जड मन गुण और कर्मों की रचना कैसे

करता है? जड़ तो स्वयं कोई कार्य कर नहीं सकता?

श्री शुक बोले—"राजन्! जड़ स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकत। किन्तु चैतन्य का संसर्ग पाकर तो जड़ ही कार्य करते हैं। वाष्प के जड़ यन्त्र स्वयं कार्य नहीं कर सकते किन्तु चैतन्य का संसर्ग पाकर वे समस्त कार्यों को करते रहते हैं। जैसे नख तथा बाल जड़ हैं, किन्तु जब तक जीवित शरीर से उनका सम्बन्ध है तब तक चैतन्य के सदृश बढ़ते हैं और चैतन्य से ही दीखते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा के संसर्ग से मन ही देहों की रचना करता है वही बन्धन तथा मोक्ष का कारण होता है।"

राजा ने पूछा—"मन को कौन बनाता है? प्रभो!

शुक बोले—"राजन्! मन को तो माया ही बनाती है। चैतन्य आत्मा का सान्निध्य पाकर यह माया ही सब गोरख धन्धे करती है। मायारूप उपाधि के कारण ही जीव को जन्म मरण रूप इस संसार की प्राप्ति होती है।

राजा ने कहा—"तब तो संसार की कभी निवृत्ति ही न होगी। संसार ऐसा ही सदा बना रहेगा।

श्री शुक बोले—"संसार की स्थिति तो अज्ञान से है। अज्ञान निवृत्तहोते ही संसार निवृत्त हो जायगा। यह सब खेल समाप्त हो जायगा। एक अद्वय आत्मा ही आत्मा अवशेष रह जायगा।"

राजा ने पूछा—"भगवन् संसार और आत्मा को हम पृथक पृथक तो देखते नहीं। वे दोनों तो परस्पर में घुल मिल गये हैं। यदि संसार नष्ट हो जायगा तो फिर आत्मा का भी नाश हो जाना चाहिये?"

कुछ कड़े स्वर में श्री शुक बोले—"राजन्! तुम इतनी कथा सुनकर भी बच्चों के से प्रश्न करते हो? मैं बार बार तो कह चुका हूँ, कि आत्मा तो अविनाशी है उसका नाश कैसे होगा, जलती अग्नि पर जल डाल दो तो सर्व व्यापक अग्नि नष्ट थोड़े ही हो

गयी। उस लकडी की अग्नि महा अग्नि में विलीन हो गयी। घडा फोड देने से आकाश थोडे ही फूट गया। अच्छा, जैसे दीपक है। उसमें मुख्य वस्तु क्या है ?"

राजा ने कहा—"महाराज ! दीपक में मुख्य वस्तु है प्रकाश ?।"

श्री शुक ने कहा—'तो क्या प्रकाश ही दीपक है ?"

राजा ने कहा—"नहीं, महाराज, प्रकाश तो दीपक नहीं है, किन्तु दीपक में से प्रकाश फैलता है ?

श्री शुक बोले—"तो इस से तो यही सिद्ध हुआ न कि दीपक पृथक है प्रकाश पृथक है।"

कुछ सोच कर राजा बोले—"अब महाराज, पृथक भी कैसे कहें ?"

श्री शुक बोले—"अच्छा, पहिले दीपक को ही समझो दीपक क्या है। कोई मिट्टी का या पीतल शीशा आदि धातु का पात्र है, उस मे बत्ती डाल दो, स्निग्धता में उस बत्ती को भिगो दिया और उस स्निग्ध बत्ती का प्रकाश से सयोग हो गया। अब दीपक जलने लगा। दीपक निर्वात स्थान मे तब तक जलता रहेगा जब तक पात्र रहेगा स्निग्धता रहेगी। बत्ती रहेगी और उस बत्ती का अग्नि से सयोग रहेगा। चारों वस्तुओं में से एक भी न रहेगी तब दीपक में से प्रकाश न निकलेगा। पात्र के अभाव में भी प्रकाश न होगा। बत्ती के विना भी बुझ जायगा, तैल न रहेगा तो भी प्रकाश न देगा और अग्नि का ससर्ग न होने से भी अन्धकार दूर न करेगा। इन चारो का जब तक सयोग रहेगा तब तक दीपक जलता रहेगा। जहाँ तेल समाप्त हुआ बत्ती जल गयी। दीपक बुझ गया। तेल, बत्ती, तथा पात्र ये भले ही नष्ट हो जाय किन्तु तेज का तो नाश नहीं होता। दीपक का तेज महा तेज में मिल जाता है। इसी प्रकार जीव का जीवत्व भी तभी तक रहता है जब तक इस त्रिगुणात्मक देह से सम्बन्ध है। रजोगुण का वृत्ति से उत्पन्न होता

है, सत्व गुण में स्थित रहता है तमोगुण की वृत्ति से नष्ट होता है। जब तक त्रिगुणात्मक जगत् है तब तक यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। अज्ञान नाश से यदि संसार का नाश हो जाय, तो स्वयं प्रकाश आत्मा तो ज्यों का त्यों बना रहता है। उसका नाश सम्भव नहीं।

राजा ने पूछा—"भगवन् आत्मा व्यक्त है या अव्यक्त ?"

श्री शुक इस प्रश्न को सुन कर हँसे और बोले—"राजन् ! आत्मा तो अव्यक्त है। वह अवाङ्‌ मनस गोचर है उसे कोई भी इन्द्रिय किसी भी नाम से व्यक्त करने में समर्थ नहीं। यदि व्यक्त के विपरीत अव्यक्त मानों तो वास्तव में आत्मा न व्यक्त ही है न अव्यक्त ही। अर्थात् वह सभी प्रकार के द्वन्द्वों से रहित है, वाणी द्वारा उसकी अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। यदि हम कहें कि वह सगुण नहीं है, तो इससे सिद्ध हुआ निगुण होगा। किन्तु वास्तव में वह सगुण निर्गुण दोनों से परे है। उसके समीप तक जब वाणी और मन के पहुँच ही नहीं, तब कहा भी क्या जा सकता है। वह आकाश के समान सब का आधार है। आकाश न व्यक्त है न अव्यक्त किन्तु समस्त प्रपञ्च को अपने में धारण किये हुए है। उसका कोई रूप नहीं कोई आधार नहीं। सब का आधार वही है। वह कहीं चलता भी नहीं चले तो तब जब उससे आगे कुछ हो। वह तो सर्वत्रपरिपूर्ण है। सब की पराकाष्ठा है। जिससे आगे कोई मार्ग ही नहीं। समुद्र का भी कहीं पार है, किन्तु आकाश का कहीं पार नहीं दिखायी देता वह अपार है, उसका अन्त नहीं इसलिये अनन्त है। इसी प्रकार आत्मा द्वन्दों से रहित समस्त प्राणियों का आधार, निश्चल और अनन्त है।"

यह सुन कर राजा परीक्षित् ने कहा—"तो मुझे एक बात बतादें अब मेरे शरीर का अन्त अत्यन्त ही निकट है। मुनि पुत्र

की नियत की हुई अवधि अब समाप्त ही होने वाली है, मैं अब क्या करूँ ?

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! मेरे गुरुदेव भगवान् शुक यह सुन कर कुछ देर मौन रहे, फिर राजा को जैसे सब से अन्तिम उपदेश दिया उसे मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

माया मन रचि देह, करम, गुन मनहि बनावै।
मायारूप उपाधि जीव जगमाहिँ भ्रमावै॥
तैल, पात्र, अरु वर्ति अग्नि मिलि दीप कहावै।
इनि तैं ह्वै कें भिन्न सर्वगत पुनि कहलावै॥
उतपति, थिति अरु प्रलय सब, तीनि गुननि को काज है।
रहै देह तब तक जगत, मोह नसें नसि जात है।

—::०::—

महाराज परीक्षित् को अन्तिम उपदेश

(१३५३)

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ।
बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ५ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

ज्यों दीपक नसि जाइ तेज को नाश न होवै ।
त्यों सब जग नसि जाइ आत्मा सुखतें सोवै ॥
नहीं व्यक्त अव्यक्त सकल आधार निरन्तर ।
आत्मा अखिल अनन्त अनामय अच्युत निर्जर ॥
अन्वय अरु व्यतिरेक तैं, दृष्टा दृश्य विचार तैं ।
वासुदेव चिन्तन करो, हटो जगत् व्यवहार तैं ॥

वाह्य प्रपञ्च से हटकर मन जब अपने भीतर में ही सुख स्वरूप सत्य का अनुसन्धान करता है तब उसे यथार्थ ज्ञान होता है और उसी समय उसे परमार्थ की प्राप्ति होती है। सत् और असत्

---

* श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित् से कह रहे हैं—"राजन्! तुम भगवान् वासुदेव का चिन्तन करते हुए द्रष्टा-दृश्य विषयक अन्वय व्यतिरेक के विचार से युक्त अपनी बुद्धि के द्वारा देहादि उपाधि में स्थित अपने आत्मा का स्वयं ही चिन्तन करो।"

का कुछ ऐसा समिश्रण हो गया है, कि उसमें से [असत् को छाँट देना सत् को प्राप्त कर लेना बड़ी युक्ति का काम है। लोग यथार्थ वस्तु को भूलकर आभास के पीछे पड़े हैं। बिम्ब का अन्वेषण न करके प्रतिबिम्ब के ही पीछे पागल बने हुए हैं। इस विषय में एक दृष्टान्त दिया करते हैं।

कोई एक राजा थे। उनकी एक अत्यंत ही प्यारी सुकुमारी रानी था। राजा अपनी रानी को अत्यधिक प्यार करते थे। रानी के पास एक अत्यन्त ही बहुमूल्य हार था। उसमें ऐसे ऐसे बहुमूल्य रत्न थे जो अन्यत्र कहीं मिलने अत्यन्त ही दुर्लभ थे। हार अद्वितीय था। उसके समान दूसरा हार मिलना अत्यन्त ही कठिन था। रानी उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करती।

एक दिन रानी उस हार को रखकर धूप में स्नान कर रही थी। उसी समय एक बड़ा भारी मोटा ताजा बन्दर आया और चमकीली वस्तु देखकर उस हार को उठा ले गया रानी बन्दर को देखकर बहुत डर गयी थी, उसके मुख से वाणी भी नहीं निकली। पीछे जब दासियों ने सुना तो हल्ला गुल्ला किया तब तक बन्दर उस हार को लेकर सघन वन में चला गया। रानी का तो मानो सर्वस्व ही लुट गया। उसने अन्न जल छोड़ दिया। राजा ने जब यह समाचार सुना तो दौड़े दौड़े रानी के पास आये उसे भाँति भाँति से समझाया, उस से भी अच्छा हार बनवा देने का आश्वासन दिया, किन्तु वह असत्य आश्वासन था, उससे अच्छा तो क्या उसके समान भी हार बनना अत्यन्त कठिन था। रानी किसी प्रकार नहीं मानी। अब तो राजा को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने गाँव गाँव नगर नगर यह डौंडी पिटवा दी कि जो मेरी रानी के हार का पता लगा देगा उसे एक लक्ष्य सुवर्ण मुद्रायें पारितोषिक में दी जायँगी।" लक्ष सुवर्ण मुद्राओं के लोभ से सहस्रों मनुष्य उसे खोजने लगे, किन्तु हार नही मिला नहीं मिला।

राजा को हार की उतनी चिन्ता नहीं थी, किन्तु रानी को दुखी देखकर वे अत्यन्त चिन्तित थे उन्होंने ढुँढ़वाने का और भी अधिक प्रयत्न किया। यह तो राजा रानी की बात हुई अब उस हार की बात भी सुनिये। बन्दर ने कोई खाने की वस्तु समझी। वन में ले जाकर एक पेड़ पर बैठ कर उसकी मणियों को दाँत से दबाया। उसका दाँत टूट गया, किन्तु मणि नहीं टूटी। जब बन्दर ने देखा यह खाने की वस्तु नहीं है, तो उसी पेड़ की डाली पर उसे लटका कर कहीं चला गया।

उस पेड़ के नीचे एक निर्मल नीर का सरोवर था। उस सरोवर में प्रतिबिम्ब पड़ने से वह हार सरोवर में दिखायी देता था। संयोग की बात उसी मार्ग से एक साधारण कर्मचारी हार को खोजता हुआ वहाँ आ निकला। उसने देखा तालाब में हार दिखायी दे रहा है। उसके रोम रोम खिल उठे। उसने सोचा—"आज हार लेकर जब मैं राजा के समीप जाऊँगा, तो राजा मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होंगे। एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा तो देंगे ही और न जाने क्या दे दें। मेरे सात जन्म के दरिद्र कट जायँगे।" यही सब सोचकर अत्यन्त प्रसन्नता में भर कर वह जल में कूद पड़ा। कूदनेसे जल में हिलोरें आयीं कीच उठ आने से जल मैला भी हो गया। प्रतिबिम्ब दिखायी न देने लगा। उसने समझा हार जल में नीचे कीच में खो गया है। अब वह नीची दृष्टि करके उसे कीच में ढूँढ़ने लगा। यदि दृष्टि को ऊँची करके देखता तब तो उसे यथार्थ हार दिखायी दे जाता। उसने तो दृष्टि नीची कर रखी थी, हार पेड़ पर था वह कीच में उसका अन्वेषण कर रहा था। बहुत देर तक वह प्रयत्न करता रहा, किन्तु उसे हार मिला नहीं। निराश होकर किनारे पर आ गया। किनारे पर आते ही उसे फिर जल में हार दिखायी देने लगा। उसी समय १०, ५ मनुष्य और आ गये उन्होंने भी हार को निकालने का प्रयत्न किया सब व्यर्थ

हुआ। होते होते बात राजा तक पहुँची। वह भी सदल बल वहाँ आ गया। राजा भी जल में उतरा किन्तु हार नहीं मिला। सभी चिन्तित थे, कि उसी समय एक महात्मा वहाँ आ गये।

महात्मा ने पूछा—"भाई, तुम सब लोग इतने व्यग्र क्यों हो, किस वस्तु को खोज रहे हो।"

राजा ने कहा—"भगवन्! मेरी रानी का हार खो गया है, वह जल में दिखायी तो देता है, मिल नहीं रहा है।"

यह सुन कर महात्मा हँसे और बोले—"राजन्! हार जल में नहीं है।"

महात्मा बोले—"राजन् जो दिखाई दे रहा है, यह यथार्थ हार नहीं है, यह तो हार का प्रतिबिम्ब है, तुम नीचे न देखकर ऊपर देखो। प्रतिबिम्ब के द्वारा बिम्ब को देखने का प्रयत्न करो। नीचे खोज न करके ऊपर को दृष्टि दौड़ाओ।"

महात्मा जी का उपदेश मानकर राजा ने नीचे से अपनी दृष्टि ऊपर की। उसे पेड़ की शाखा पर टँगा हार दिखायी दिया तुरन्त ऊपर चढ़कर हार को उतार लिया। उसे अपनी रानी को देकर सुखी और प्रसन्न हुआ।

यह तो हुआ दृष्टान्त अब इसका द्राष्टान्त भी सुन लीजिये। यह शरीर ही एक राज्य है। जीव ही उसका राजा है बुद्धि उसकी पत्नी है। आत्मा ही हार है। अज्ञान ही बन्दर है। अन्तःकरण ही सरोवर है। अज्ञानी जीव उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब देखते हैं, उसी को सत्य समझते हैं। निर्मल अन्तःकरण में आत्मा का प्रतिबिम्ब दिखायी भी देता है, वही जब पाप कर्म करते करते मलिन हो जाता है, तो वह भी दिखायी नहीं देता। गुरुदेव ही सन्त हैं, जब वे प्रतिबिम्ब के सहारे बिम्ब को लखा देते हैं, तो जीव कृतार्थ हो जाता है अपनी इष्ट वस्तु को पाकर सुखी बन

जाता है। जब तक अपर दिखायी देगा, ऊँची दृष्टि होते ही परावर का ज्ञान हो जायगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मेरे गुरुदेव भगवान् शुक राजा परीक्षित् को उपदेश देते हुए कह रहे हैं—"राजन् ! अन्तिम उपदेश यही है, कि तुम भगवान् वासुदेव का चिन्तन करो वे वासुदेव सर्वत्र बस रहे हैं। उनकी सुवास से ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् सुवासित है। वासुदेव भगवान् के चिन्तन से ही तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा।"

राजा ने पूछा—"कैसे चिन्तन करें भगवन् !"

मुनि बोले—"राजन् ! गुड़ का स्वाद तो स्वयं खाने से पता चलेगा। यह नहीं है, कि देवदत्त गुड़ खाय और यज्ञदत्त को उसके स्वाद का पता चले। देहादि उपाधि में स्थित अपने आत्मा का स्वयं ही चिन्तन करें।"

राजा ने कहा—"भगवन् ! मनकी तो स्वाभाविक प्रवृत्ति विषयों की ही ओर है। मन तो विषयों का ही चिन्तन करता रहता है। उससे आत्म चिन्तन कैसे करें।"

श्री शुक बोले—"राजन् ! मलिन मन ही विषयों का चिन्तन करता है, जब वह विशुद्ध बन जाता है, तो शुद्ध बुद्ध स्वरूप हो जाता है। विषय विचारिणी बुद्धि ही बन्धन कराती है। यदि वही द्रष्टा दृश्यविषयक विचार करने वाली बन जाय। अन्वय और व्यतिरेक से सूक्ष्म विषय को समझने लग जाय, अत्यन्त कुशाग्र हो जाय तो वह आत्मा को प्राप्त कराने में समर्थ हो सकती है। सत् और असत् में से असत् असत् को पृथक कर देना है। असत् को पृथक करते करते जो शेष रह जाय वही सत्य है। इसी का नाम व्यतिरेक है। सब सत्य ही सत्य है असत्य कुछ है ही नहीं। असत् की प्रतीति हमें भ्रमवश हो रही है। सर्वत्र वही एक सच्चिदानन्द घन परिपूर्ण ब्रह्म ही ब्रह्म व्याप्त है।

इसी का नाम अन्वय है। जब तुम घड़ा सकोरा, नाद, हँडिया, परिया तथा अन्य सभी पात्रों में मिट्टी ही मिट्टी देखोगे ऊपर की मिथ्या उपाधियों की ओर ध्यान ही न दोगे, तो घड़े के फूट जाने पर तुम दुखी न होगे। घड़े के फूटने पर मिट्टी तो नहीं फूट गयी। घटाकाश के नष्ट होने पर महाकाश तो नष्ट नहीं हो गया। इसी प्रकार जब तुम सर्वत्र आत्मा को ही देखोगे, तब तुम्हें तक्षक से क्या भय होगा। आज आप के सात दिन पूरे हो गये हैं। तपस्वी ब्राह्मण का वचन तो असत्य होवेगा नहीं। तक्षक तो आज अवश्य ही आवेगा। अच्छी बात है प्रसन्नता के साथ आवे आकर वह क्या करेगा शरीर को काटेगा। शरीर को काटता रहे। तुम शरीर तो हो नहीं। तुम तो आत्मा हो। आत्मा को दग्ध करने की सामर्थ्य एक तक्षक में तो क्या करोड़ों तक्षकों में नहीं हो सकती। तक्षक नहीं तक्षक का बाप भी आ जाय, तो भी वह आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

सन्निपात हो जाना, सर्प काट लेना, विष खा लेना तथा जल में डूब जाना आदि कार्य मृत्यु के कारण हैं इनसे मृत्यु हो सकती है, किन्तु मृत्यु को भी मृत्यु पद पर अभिषिक्त करने वाले परमात्मा का ये कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। परमात्मा तो मृत्यु के भी मृत्यु हैं। चूँहिया बिलाड को कैसे मार सकती है। तुम में और आत्मा में कोई भेद भाव नहीं। तुम यह सोचो कि जो मैं हूँ वही परमपद रूप ब्रह्म है और जो परमपद रूप ब्रह्म है वही मैं हूँ। अपने को देह से सर्वथा पृथक् समझो। जिसने कपड़े को

मलिन और जर्जर समझकर शरीर से पृथक् कर दिया अब चाहे कोई उसके सामने ही उसके टुकड़े टुकड़े कर दे। चीर चीर फाड़ दे उसे कुछ भी दुख न होगा। इसी प्रकार जब तुम अपने शरीर से पृथक् अनुभव करके अपने आत्मा को निष्फल पर ब्रह्म परमात्मा में स्थित कर लोगे, तब तक्षक आकर तुम्हारे सामने तुम्हारे पैरों में आकर काटे, तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर को अपनी जिह्वा से चाटे तथा तुम्हें अपनी फुफकार से डाँटे तो भी तुम न तो अपने आत्मा से ही उसे पृथक् समझोगे। और न अपने शरीर को तथा विश्व को भी आत्मा से पृथक् मानोगे सर्वत्र तुम्हें परिपूर्ण ब्रह्म ही ब्रह्म दिखायी देगा। सर्वत्र ब्रह्म दर्शन ही होंगे। दशों दिशाओं में उन मुरली मनोहर की मुरली की ही मधुर ध्वनि सुनायी दे सब में उन्हीं का रूप दीखे इसी लिये मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् की कुछ लीलाओं का वर्णन किया। जैसे भगवान् अनन्त हैं वैसे ही उनकी लीला भी अनन्त है। परिपूर्ण की सभी बातें परिपूर्ण ही होती हैं। तुमने भगवान् की लीला से सम्बन्धित जो जो प्रश्न किये, जिन जिन अवतारों के सम्बन्ध में मुझ से पूछा उन सब प्रश्नों का मैंने यथा मति उत्तर दिया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं। अब भी यदि कोई शङ्का शेष रह गई हो, तो उसे मुझसे पूछो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! राजा परीक्षित् ने जब मेरे गुरु देव के मुख से इतने उदारता पूर्ण प्रेम में पगे हुये मधुर वचन सुने, तो उनका हृदय गद् गद् हो गया। नेत्रों से झर झर अश्रु प्रवाहित होने लगे। अत्यन्त आभार प्रदर्शित करते हुए जिस

प्रकार उन्होंने मेरे गुरुदेव की अभ्यर्चना की उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

आत्म चिन्तना करो अह सत चित्त कहलाऊँ।
परम धाम हौं ब्रह्म परमपद ब्रह्म कहाऊँ॥
परमात्मा में जबहिं आतमा कूँ तुम देखो।
फिरि तक्षक, जग, देह सकल आत्मा में पेखो॥
सात दिवस में यथा मति, भव भय हर सुखकर सुकर।
कही विष्णु गाथा कछुक, कहूँ कहा अब भूपवर॥

—::०::—

श्री शुक के प्रति राजा द्वारा कृतज्ञता प्रकाश

(१३५४)

एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षित्,
व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन।
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना
बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥*

(श्री० भा० १२ स्क० ६ अ० १ श्लो०)

छप्पय

श्री शुक को सुनि प्रश्न नयन नृप के भरि आये।
ह्वै कें अति ही दीन चरन कमलनि लिपटाये॥
पुनि पुनि करें प्रनाम न निकसै मुखतें बानी।
पुनि कछु धरि कें धीर कहें नृप सरल अमानी॥
प्रभो ! कृतारथ ह्वै गयो, सुनि कें श्याम चरित्र कूँ।
जनम मरन को भय भग्यो, थापूँ हरि में चित्त कूँ॥

संसार में कोई किसी का कुछ भी कार्य कर देता है, तो करने वाले के प्रति पुरुष कृतज्ञता प्रकट करते हैं। वास्तव में प्रवृत्ति साधारणतया स्वार्थ परक है। सभी अपना स्वार्थ सिद्ध करना

*श्री सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! जब श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् 'और क्या सुनना चाहते हो, यह प्रश्न किया तो उन समदर्शी व्यास नन्दन के इस कथन को सुन कर राजा ने उनके चरण कमलों में सिर से प्रणाम किया और दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर कहने लगे।"

चाहते हैं। दूसरो की हानि भले ही हो जाय, अपना कार्य हो जाय। लोगों की बुद्धि देह गेह कुटुम्ब परिवार तक ही सीमित है। जो इससे आगे बढ जाते हैं, वे परमार्थी कह लाते हैं। बहुत से परमार्थ के नाम पर भी स्वार्थ का ही साधन करते हैं, वे परमार्थ भी करते हैं, तो कुछ न कुछ स्वार्थ सम्मुख रख कर ही करते हैं। जो निस्वार्थ भाव से बिना किसी फल की इच्छा के—करुणा के वशीभूत होकर प्राणियों का भला करते हैं, स्वय कष्ट सह कर दूसरों क कष्टों को हरते हैं। वे ही महा पुरुष हैं। उनमें भी जो जन्म मरण के दु,ख को सदा के लिये मेट देते हे। जो परमार्थ के पथ को परिष्कृत करके मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। भगवत् लोक तक पहुँचाते हैं, उन सद्‌गुरु के प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रकाशित की जावे उतनी ही थोडी है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! मेरे गुरुदेव साक्षात् पर ब्रह्म स्वरूप ही हैं। वे सम्पूर्ण चराचर मे अपना ही स्वरूप समझते हैं। उनकी दृष्टि में विषमता नहीं। वे सदा ब्रह्मभाव मे भावित रहते हैं। उनके लिये कोई बडा नही, छोटा नही, ऊँच नहीं नीच नहीं। उन्हीं समदर्शी श्री शुक ने जब राजा से यह प्रश्न किया, कि अब तुम और क्या सुनना चाहते हो, तो इस प्रश्न को सुनते ही राजा रो पडे। उनका सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो गया। कृतज्ञता के भार से वे दब से गये। गुरुदेव के अरुण मृदुल चरणारविन्दो मे उन्होंने अपना मस्तक रख दिया। अश्रुओं से उनके पाद पद्मों मे अर्घ्य देते हुए गद्‌गद् कण्ठ से कहने लगे—"प्रभो! अब पूछने को कुछ भी अवशेष नहीं रहा। मुझे जो पूछना था सब पूछ चुका। मेरा समस्त शकाओ का समाधान हो गया। ससार मे श्रवणीय एक ही पदार्थ है श्री भगवान् का चारु चरित। उसका न आदि है न अन्त है, वह अनादि अनन्त एक रस और नित्य है। उस भगवत् चरित को आपने करुणार्द्र चित्त होकर अपनी

अहैतुकी कृपा से मुझे सुना दिया। मेरी इतनी शक्ति कहाँ थी, जो मैं आपके मुख से इस भागवत चरित को सुनता। आप तो गो दोहन समय तक भी कहीं कठिनता से ठहरते हैं आपकी गति भी अलक्षित है, कोई अपने पुरुषार्थ से आपको ढूंढ़ना चाहे, तो नहीं ढूँढ़ सकता। आपने अपने आप ही अनुग्रह करके इस अधम को दर्शन दिये और दिव्याति दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया। आपके मुखारविन्द से निस्सृत ज्ञानामृत को पान करके कृत कृत्य हो चुका। आपके अनुग्रह के लिये मैं अत्यन्त ही आभारी हूँ। जैसे पापियों का पाप करना सहज स्वभाव है उसी प्रकार महा पुरुषों का भी दया करना सहज स्वभाव ही है दीन दुखियों को दुखी देख कर वे दया किये बिना रह ही नहीं सकते। ये संसारी प्राणी दैहिक दैविक और भौतिक (आधि भौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) तापों से सदा संतप्त बने रहते हैं। ऐसे महानुभाव स्वभावतः ही अनुग्रह किया करते हैं। इसमें कुछ विशेषता नहीं। कोई आश्चर्य की बात नहीं।"

श्री शुक बोले—"राजन्! शिष्टाचार करने का अब समय नहीं। आप यह बताओ, कि मैंने जो तुम्हें कुछ सुनाया, उसे तुमने ध्यान पूर्वक तो सुना है न ?"

राजा ने श्रद्धा सहित दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधे हुए विनीत भाव से कहा—"ब्रह्मन्! यह सात्वत संहिता श्रीमद्भागवत महा पुराण की कमनीय कथा—मैंने आपके मुखारविन्द से भली भाँति सुनी और सुन कर मेरा रोम रोम प्रफुल्लित हो गया, मैं कृत कृत्य हो गया। पुराण तो मैंने और भी बहुत सुने थे, किन्तु इसके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या, यह तो स्वादु स्वादु पदे पदे—पद पद पर पुण्य प्रद है, इसका तो अक्षर अक्षर सुख कर है।'

श्री शुक ने पूछा—"राजन्! इसमें ऐसी अन्य पुराणों से विशेषता आप ने क्या अनुभव की ?"

राजा परीक्षित बोले—'प्रभो! संसार को सभी शास्त्रकारों ने असार बताया है, इस असार संसार में यदि कुछ सार है तो उन उत्तम लोक श्री हरि के नामों का कीर्तन करना, उनके दिव्याति दिव्य मधुराति मधुर लीला चरितों का श्रवण और उनके त्रैलोक्य पावन रूप का ध्यान करना यही सब का श्रेष्ठ सार है। इन्हीं का बारम्बार इसमें वर्णन किया गया है। इस सम्पूर्ण संहिता में भगवत् महिमा के अतिरिक्त दूसरी कोई बात ही नहीं। बार बार हेर फेर कर वही कृष्ण कथा वही अवतार चरित कोई प्रसंग ऐसा नहीं जो इधर उधर की बातों का हो। प्रथम स्कन्ध में भगवत् भक्ति का माहात्म्य वर्णन करके संक्षेप में अवतार चरित्रों का ही वर्णन है फिर भगवान् के अवतार नारद जी का चरित्र है। उन्होंने अपने मुख से भगवदावतार व्यास जी से कहा है। फिर भगवान् ने जिस प्रकार पाण्डवों पर कृपा की। गर्भस्थ तुम को बचाया है उसका वर्णन है फिर तुम्हारा मेरा मिलन कथारम्भ है।'

द्वितीय स्कन्ध में ध्यान धारणा भगवत् लीला तथा भगवत् सम्बन्धी प्रश्न और भागवत के दश लक्षण हैं। तृतीय स्कन्ध में आरम्भ में ही उद्धव जी ने विदुर को भगवान् के चरितों को सुनाया। फिर विदुर और मैत्रेय सम्वाद तो भगवत् लीलाओं के सम्बन्ध में है। सृष्टि का विस्तार वराह चरित तथा कपिलावतार चरित है। चतुर्थ स्कन्ध में ध्रुवनारायण चरित तथा पृथु-अवतार चरित है। पंचम स्कन्ध में ऋषभावतार चरित द्वीप और खण्डों के भिन्न भिन्न अवतारों का चरित है। षष्ठ स्कन्ध में भगवन्नाम महात्म्य हंस गुह्य स्तोत्र और नारायण कवच की ही महिमा है। सङ्कर्षणावतार भगवान् की महिमा और ऐश्वर्य का वर्णन है। सप्तम स्कन्ध सम्पूर्ण में नृसिंह चरित तथा धर्म का वर्णन है। अष्टम स्कन्ध में ग्राह से गज को बचाने वाले हरि भगवान् का चरित, अजित, माहिनो, कच्छप धन्वन्तरि तथा मन्वन्तर के

अवतारों का तथा भगवान् के वामनावतार का वर्णन है। नवम में श्री राम चरित तथा श्री कृष्ण चरित की भूमिका के लिये अनेक भगवन् भक्त राजाओं का वर्णन है। दशम एकादश और द्वादश इन तीनों में विशुद्ध श्री कृष्ण चरित का ही वर्णन है। आगे बुद्ध कल्कि इन अवतारों का भी वर्णन है। एक अक्षर भी। तो ऐसा नहीं। जो भगवान् और भागवतों के उद्देश्य से न कहा गया हो। एक ही भाँति का पुनः पुनः पिष्ट पेषण किया गया है। जैसे एक ही व्यक्ति के भिन्न भिन्न वेष भूषा तथा चेष्टा के भिन्न भिन्न चित्र हों। एक ही खोआ की भिन्न भिन्न मिठाइयाँ बनायी हो एक ही चीनी के भिन्न भिन्न खिलौनें बनाये गये हों। एक ही कागद के भिन्न भिन्न फूल बनाये गये हों, एक ही गंगा जल को भिन्न भिन्न रंग के काँच पात्रों में रख दिया हो इसी प्रकार एक ही अवतार कथा को भिन्न भिन्न प्रकार से इसमें कहा गया है। अब मेरा मृत्यु का भय छूट गया।"

श्री शुक ने पूछा—"राजन्! अवतार चरितों को सुन कर मृत्यु का भय तुम्हारा क्यों छूट गया?"

राजा ने कहा—"भगवन्! कोई हाथी है उसे चारों ओर से दावानल ने घेर लिया हो, तो उसे भय होना स्वाभाविक ही है, किन्तु यदि उसे कोई कृपालु गंगाजी धारा दिखा दे, तो उसे पाकर वह निर्भय हो जाता है, उसमें प्रविष्ट होकर वह ताप से मुक्त हो जाता है। कोई जाड़े के दिनों में वायु और वर्षा से ठिठुर रहा है यदि कोई दयावान् उसे सुरक्षित घर और जलती हुई अग्नि दिखा देता है, तो उस सुरक्षित घर को पाकर वह सरदी से छूट जाता है, जिस प्रकार कोई प्रबल धारा में वह रहा हो उसी समय कोई नौका लेकर उसे चढ़ा ले तो वह अपने को सुरक्षित समझता है उसी प्रकार आपने भी मुझे निश्चय पूर्वक निर्भय स्थान दिखा दिया है। अब तो भगवन्! मैं आपकी कृपा से ब्रह्म निर्वाण में

प्रविष्ट हो गया हूँ। अब मुझे किसका भय, अब तो मैं सर्वथा निर्भय हो गया हूँ।"

श्री शुक ने पूछा—"राजन्! फिर भी शरीर को आकर तो तक्षक काटेगा ही।"

दृढ़ता के साथ राजा ने कहा—"महाराज! काटेगा तो काटे। मैं कुछ शरीर तो हूँ ही नहीं। जब मैंने मृत्यु के भी मृत्यु का आश्रय ग्रहण कर लिया, तो फिर मुझे मृत्यु से क्या भय? जिसने राजा का कृपा प्रसाद प्राप्त कर लिया उसे फिर उसके सेवकों से क्या भय?"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान् शुक बोले—"धन्य है राजन्! आपको और आपकी विशाल धारणा को। आपने ही मेरी शिक्षा का यथार्थ सार समझा है। तुम्हें कथा सुनाकर मैं भी कृतार्थ हो गया। तुम मुझे सर्व श्रेष्ठ परम उपयुक्त श्रोता मिले अब तुम क्या चाहते हो?"

राजा ने कहा—"ब्रह्मन्! अब तो सुनने योग्य जो कुछ था, सब सुन लिया। अब तो आप मुझे ऐसी आज्ञा दें, कि भगवन्नामों के अतिरिक्त अब मैं कुछ भी न बोलूँ। वाणी का संयम करके मौन धारण कर लूँ और समस्त कामनाओं से रहित हुए अपने इस विशुद्ध चित्त को भगवान् वासुदेव में लगाकर तब अपने इस नश्वर पाञ्च भौतिक शरीर का सहज में ही त्याग कर दूँ। भगवन्! किन शब्दों में आपकी स्तुति करूँ, क्या कह कर कृतज्ञता प्रकट करूँ, कैसे मैं आभार जताऊँ, कैसे मैं विनती करूँ आपने अमल

विमल भगवत् चरित सुनकर ज्ञान विज्ञान में मेरी स्थिति करा दी। मेरे अज्ञानान्धकार को दूर करके ज्ञान का आलोक दिखा

दिया। मेरे सभी संशयों का जड़ से उच्छेदन कर दिया, भगवान् का अत्यन्त, मङ्गलमय कल्याणकारी मुक्ति दाता स्वरूप दिखा दिया। अब तो कहने सुनने को कुछ भी अवशेष नहीं रहा।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! जब मेरे गुरु देव भगवान् शुक ने राजा की यह बात सुनी तो वे परम प्रमुदित हुए। राजा को कृतार्थ समझ कर अब वे जाने को उद्यत हुए। जैसे राजा के द्वारा पूजित होकर मेरे गुरुदेव प्रस्थान करेंगे और राजा मौन धारण करके तक्षक की प्रतीक्षा करेंगे उस प्रसङ्ग को मैं आगे

कहूँगा। मुनियो! आपने बड़े धैर्य से कथा सुनी। अब तो कर काँटे पर कथा आ गयी। अब तो समाप्त होने वाली है। आगे के प्रसङ्ग को और भी समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

तब मुख निस्सृत श्याम चरित अति मधुमय लाग्यो।
श्रवन पुटनि करि पान शोक भय मम भाग्यो॥
पाइ ब्रह्म निरबान भयो हौं देव कृतारथ।
भयो दूर अज्ञान लह्यो अब ज्ञान यथारथ॥
आयसु देवें दयानिधि, करूँ मौन धारन अबहिँ।
सुनि शुक अति हरषित भये, गिरे सुमन नभ तें तबहिँ॥

—:o:—

श्री शुकगमन तक्षकागमन

(१३५५)

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना।
हन्तु कामो नृपं गच्छन् ददर्श पथि कश्यपम् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ६ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

शुक की पूजा करी सविधि नृप विह्वल ह्वै कें।
मुनिनि संग शुक गये नृपति कूँ आशिष दै कें ॥
बैठे : कुशा बिछाय विचारें तक्षक आवे।
आत्मा तो है नित्य देह कूँ कोई खावे ॥
इत शृंगी ऋषि शाप तें, सर्प नृपहिँ डवेसिवे चल्यो।
विप हारी कश्यप गुनी, तक्षक कूँ मग में मिल्यो ॥

भावी होकर ही रहती है, उसे कोई मेंट नहीं सकता। ज्ञान हो जाने पर उसकी प्रतीति नहीं होती। दुख सुख में समता हो जाती है। दुख को दुख समझना और सुख को सुख समझना यही

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब राजा परीक्षित् को मारने के लिये कुपित मुनिकुमार शृंगी द्वारा प्रेरित तक्षक नाग चला, तो उसने मार्ग में कश्यप नामक ब्राह्मण को देखा।"

अज्ञान है। जब दुख सुख दोनों ही एक से प्रतीत होने लगे। जन्म मृत्यु मे कोई भेद ही न रहे तो फिर जीवन हो या मरण हानि हो या लाभ जय हो या पराजय फिर तो चिन्ता रहती ही नहीं। यही बात भगवान् ने अर्जुन को समझायी थी, कि सुख दुख, लाभ अलाभ तथा जय पराजय इनमे समबुद्धि करके तुम युद्ध के लिये उद्यत हो जाओ तुम्हें पाप नहीं लगेगा। अवश्यम्भावी मृत्यु तो ज्ञानी की भी होगी अज्ञानी की भी होगी। कथा सुनने वाले की भी होगी विषयी की भी होगी, अन्तर इतना ही होगा, विषयी मृत्यु के समय तड़फेगा, रोवेगा, चिन्ता करेगा। ज्ञानी शान्त रहेगा हँसेगा और निश्चिन्त होकर सर्प जैसे केंचुल को छोड़ देता है वैसे शरीर को छोड़कर निर्वाणपद को प्राप्त होगा। कथा श्रवण नाम स्मरणादि का अंतिम फल यही है, कि मृत्यु का भय हृदय से निकल जाय।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! जब मेरे गुरुदेव भगवान् शुक ने समझ लिया कि राजा को पूर्ण आत्मज्ञान हो गया, इसका मृत्यु का भय भाग गया, इसने अभय पद को प्राप्त कर लिया, तब उन्होंने कहा—"अच्छा बात है राजन्! अब आप वाणी का संयम कर लें। मौन व्रत धारण कर लें, मैं तो अब जा रहा हूँ, अब आप को आत्म ज्ञान हो गया।"

प्रेमाश्रु बहाते हुए राजा बोले—'गुरुदेव! यह सब आपकी कृपा का ही प्रसाद है। आपने ही मुझे भागवती कथाओं को सुना कर अभय पद प्राप्त कराया। प्रभो! अब आप तनिक देर और रुक जायँ मैं आपकी उत्तर पूजा और कर लूँ।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! कृपा के सागर मेरे गुरुदेव पूजा की इच्छा न रहने पर भी राजा का मन रखने के लिये कुछ देर को और रुक गये। राजा ने स्नेह भरित हृदय से परम हंस चक्र चूडामणि भक्त शिरोमणि दिगम्बर व्यासनन्दन भगवान् शुक के

मृदुल अरुण युगल चरणों को चन्दन केशर कर्पूर युक्त गंगाजल से धोया। गन्ध, अक्षत, पुष्प, दुग्ध, कुशा, दूर्वा, शहद आदि पदार्थों से युक्त अर्घ्य उन्हें दिया। आचमनीय जल देकर स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, चंदन, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल पुंगी फल, ऋतुफल और दक्षिणादि अर्पण करके विधिवत् आरती की, स्तुति, प्रदक्षिणा और क्षमा याचना करके साष्टांग दंडवत् की और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। भगवान शुक ने शास्त्रीय विधि से राजा की पूजा को स्वीकार किया और फिर राजा से अनुमति लेकर भिक्षुओं के सहित वहाँ से उठकर चल दिये। महाराज परीक्षित् ने भी कुछ दूर तक उनका अनुगमन किया। राजा को रोक कर उन्हें बार बार आशीर्वाद देकर विरक्तों के शिरोमणि मेरे गुरु देव इच्छानुसार गङ्गा किनारे किनारे हरिद्वार की ओर चल दिये। जब तक भगवान् शुकके दर्शन होते रहे तबतक महाराज एक टक उन्हीं की ओर देखते रहे, जब वे आँखों से ओझल हो गये, तब राजा लौटकर अपने स्थान पर आ गये।

शौनकजी ने पूछा—"सूत जी! महाराज परीक्षित् ने आकर क्या किया? तक्षक आया या नहीं। महाराज परीक्षित् तो अपनी मृत्यु को रोकने का कोई उपाय करने ही क्यों लगे, किन्तु उनके सर्व समर्थ पुत्र महाराज जनमेजय ने कुछ यत्न किया या नहीं। कृपा करके इस वृत्तान्त को हमें और सुनाइये।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज! यह प्राणी अपनी करनी में कुछ कसर थोड़े ही रखता है। शक्ति भर अपनी या अपने प्रेमी सम्बन्धो की मृत्यु को टालने के सभी उपाय करता है, फिर भी होनी तो होकर ही रहती है, उसमें किसी का भी पुरुषार्थ काम नहीं आता। अच्छी बात है महाराज परीक्षित् के इस नश्वर शरीर का जैसे अन्त हुआ उस वृत्तान्त को मैं आपको सुनाता हूँ।

गुरुदेव के पधारने के पश्चात् महाराज परीक्षित् अपने गङ्गा तट के स्थान पर आ गये वे सभी संशयों से रहित हो गये थे, उन्हें देह, गेह, कुटुम्ब, परिवार तथा राज्य आदि में किसी भी प्रकार की आसक्ति नहीं रही थी। उनकी पूर्णनिष्ठा ब्रह्म में हो गयी थी। ऐसे वे महायोगी वीत राग राजर्षि परीक्षित् गङ्गाजी के पूर्व तट पर कुशाओं का आसन बिछा कर, उत्तर की ओर मुख करके शान्त भाव से बैठ गये। उन्होंने सब ओर से अपने चित्त की वृत्ति को हटाकर उसे आत्मा में ही समाहित किया। अब वे दृश्य प्रपञ्च को सर्वथा भुलाकर भगवान् के ध्यान में ही तल्लीन हो गये। उन्होंने अपने प्राणों का निरोध कर लिया, वे स्थाणु के सदृश सूखे वृक्ष के सदृश चेष्टा हीन हो गये। शरीर की उन्हें सुधि बुधि ही न रही।

इधर महाराज परीक्षित् तो कथा सुन रहे थे, उधर उनके पुत्र चक्रवर्ती महाराज जनमेजय इस बात की चिन्ता में थे, कि किस प्रकार अपने पूज्य पिता जी को तक्षक से बचाया जाय। उन्होंने अपनी शक्ति भर तक्षक से बचाने के सब उपाय किये। दूर दूर से विष उतारने वाले मन्त्र तन्त्रज्ञ व्यक्ति बुलाये गये। विष को हटाने वाली उत्तमोत्तम औषधियाँ मंगायी गयीं। गङ्गाजी में ही उन्होंने ऐसा सुरक्षित काँच का घर बनवाया जिसमें वायु भी बिना अनुमति के न जा सके। उसके चारों ओर विषहारिणी औष-धियाँ रख दी गयीं कि कोई विषधर जीव जन्तु प्रवेश न कर सके। चारों ओर सशस्त्र सेना खड़ी कर दी, कि महाराज से कोई भी व्यक्ति न मिल सके। केवल आशीर्वाद देने का विप्रगण ही जा सकते हैं। इसप्रकार जितनी उनमें शक्ति थी सामर्थ्य थी, उसके अनुसार उन्होंने विष रोकने का पूरा प्रयत्न किया। महाराज परी-क्षित् तो ध्यान मग्न थे, वे तो शरीर से ऊपर उठ चुके थे, उनके लिए तक्षक काट ले तो भी वैसा न काट ले तो भी वैसा। जन-

मेजय ने जो उपाय किये उनके लिये भी उन्होंने मना नहीं किया और यह करो ऐसा कहा भी नहीं वे तो दुख सुख में सम हो गये।

सात दिन बीत चुके थे, आज ही तक्षक के आने का दिवस था। सत्यवादी अमोघ वीर्य ब्रह्मचारी मुनि पुत्र का शाप व्यर्थ कैसे हो सकता था। उसकी वाणी के अनुरूप ही क्रिया होनी थी, उसी की प्रेरणा से तक्षक राजा को डसने चला। कामरूपी मायावी तक्षक ने ब्राह्मण का रूप बना लिया था वह भली प्रकार सज धज कर राजा की ओर चला। चलते चलते उसे मार्ग में एक वन के बीच में कश्यप नाम का एक बड़ा तेजस्वी ब्राह्मण मिला। वह बड़ी शीघ्रता से गङ्गा तट की ओर जा रहा था। तक्षक ने उससे पूछा—"ब्रह्मन्! आप इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रहे हैं?"

ब्राह्मण ने कहा—"द्विजवर! आज महाराज परीक्षित् को दुष्ट तक्षक काटेगा, वहीं मैं जा रहा हूँ।"

तक्षक ने कहा—"ब्रह्मन्! वहाँ जाकर आप क्या करेंगे?"

कश्यप ने कहा—"तक्षक राजा को काटेगा हम उसे अपने मंत्र प्रभाव से अच्छा कर देंगे।"

तक्षक ने पूछा—"इससे क्या होगा?"

ब्राह्मण ने उत्तेजित होकर कहा—"होगा क्या, धर्मात्मा राजा के प्राण बच जायगे हमारी कीर्ति होगी और हमें विपुल धन पारितोपिक में मिलेगा।"

तक्षक ने पूछा—"यदि आप राजा को न जिला सके तो क्या होगा?"

गर्ज कर ब्राह्मण ने कहा—"न क्यों न जिला सकेंगे। मेरी विद्या कभी भी व्यर्थ नहीं होने वाली। आजतक उसका कोई भी प्रयोग असफल नहीं हुआ है।"

तक्षक ने कहा—"ब्रह्मन्! आपने साधारण सर्पों के विष को

उतारा होगा। तक्षक साधारण सर्प नहीं है। वह नागराज है उसके विष को उतारना साधारण बात नहीं है।"

आवेश में आकर ब्राह्मण ने कहा—"द्विजवर! आप कैसी अविश्वास की बातें कर रहे हैं। तक्षक नहीं तक्षक का बाप भी आ जाय हम उसके विष को उतार सकते हैं। एक तक्षक नहीं लाख तक्षक मिलकर आ जायँ तो भी वे मेरी विद्या के सम्मुख राजा को नहीं मार सकते नहीं मार सकते।"

तक्षक ने कहा—"ब्रह्मन्! आप तभी तक ये बढ बढ कर बातें कर रहे हैं, जबतक आपके सम्मुख तक्षक आता नहीं। तक्षक के आने पर आपकी सब सिटिल्ली भूल जायगी।"

घृणा और अवज्ञा के स्वर में कश्यप ने कहा—'छि छिः तुम ब्राह्मण होकर कैसी उत्साह हीन अविश्वास की बात कर रहे हो। तुम भी तो चल ही रहे हो, देखना तक्षक मुझे देखकर भागता है या मैं उसे देखकर भागता हूँ।'

तक्षक ने कहा—"अच्छा, तक्षक यहीं आ जाय, तो आप उसे अपनी विद्या की परीक्षा देंगे ?"

आवेश मे आकर ब्राह्मण बोला—"एक बार नहीं लाख बार। तक्षक आवे मेरे सम्मुख।"

हँसकर तक्षक ने कहा—"अच्छा, ब्रह्मन्! मैं ही तक्षक हूँ, दीजिये आप परीक्षा।"

बिना सकोच के निर्भय होकर ब्राह्मण बोला—"अच्छा, आप ही तक्षक हैं। तभी ऐसी बिना सिर पैर की आप बातें कर रहे थे। मैं उद्यत हू लीजिये मेरी परीक्षा। मेरे शरीर में जहाँ भी आपकी इच्छा हो काटिये।"

तक्षक ने कहा—"मैं ब्राह्मण को नहीं काटूँगा और कहीं परीक्षा दीजिये।"

ब्राह्मणने गर्जकर आवेश केस्वर में कहा—"तुम्हारी जहाँ कहीं

इच्छा हो वहीं अपने विष का प्रयोग करो। तुम काटो मैं अभी अच्छा करता हूँ।"

तक्षक ने कहा—"देखिये, ब्रह्मन्! यह सम्मुख विशाल वट वृक्ष है, मैं इसी में दाँत मार कर इसे भस्म करता हूँ, आपके मंत्रों में शक्ति हो तो इसे विषहीन बनाकर पुनः हरा भरा कर दीजिये।"

उत्साह के साथ कश्यप ने कहा—"बड़ी प्रसन्नता के साथ आप विष प्रयोग कीजिये।"

इतना सुनते ही तक्षक ने विषधर नाग का रूप रख लिया

और उस विशाल वृक्ष में अपने तीक्ष्ण विष का प्रयोग किया। देखते ही देखते वह इतना बड़ा वृक्ष जल कर भस्म हो गया यहाँ

केवल भस्म की छोटी सी ढेरी रह गयी। उसे भस्म करके तक्षक बोला—"यदि आप इसे पुनः ज्यों का त्यों कर दें तो आपकी विद्या की प्रशंसा है।"

ब्राह्मण ने अविचल भाव से कहा—"अच्छी बात है अभी लीजिये।" यह कह कर उन्होंने हाथ पैर धोये शुद्ध जल से आचमन किया और हाथ में जल लेकर मंत्र पढ़कर उस राख की ढेरी पर छोड़ा। अभिमंत्रित जल के पड़ते ही उस राख में से एक अंकुर उत्पन्न हुआ देखते देखते वह बढ़ने लगा। कुछ ही समय में वह ज्यों का त्यों हरा वृक्ष हो गया, यही नहीं उस पर एक आदमी चढ़ कर सूखी लकड़ियों को तोड़ रहा था वह भी ज्यों का त्यों उस पर लकड़ी तोड़ता दिखायी दिया।"

इस चमत्कार को देख कर तक्षक आश्चर्यचकितर्य हो गया। उसने सोचा—"इस ब्राह्मण के रहते तो मेरी दाल गल नहीं सकती। इसे किसी प्रकार लौटाना चाहिये।" यही सब सोचकर वह बोला—"विप्रदेव! धन्य है आप को और बार बार धन्यवाद है आपकी इस अव्यर्थ विद्या को। आपकी विद्या सफल है, आप का विश्वास दृढ़ है, किन्तु मैं आप से एक बात और पूछना चाहता हूँ, आज्ञा हो तो पूछूँ?"

ब्राह्मण ने गम्भीर होकर कहा—"हाँ, आप जो पूछना चाहते हैं, प्रसन्नता पूर्वक पूछें।"

तक्षक ने कहा—"विप्रदेव! पूछना मैं यह चाहता हूँ, कि संसार में कोई ऐसा भी है जो प्रारब्ध को मेंट दे, भावी को अन्यथा कर दे?"

हँसकर ब्राह्मण ने कहा—"अरे, भाई! ब्रह्माजी ने यही तो एक मनुष्य में अपूर्णता रख दी है। प्रारब्ध को कोई नहीं मेट सकता भावी को अन्यथा करने की सामर्थ्य ब्रह्माजी में भी

नहीं है। यहाँ आकर मनुष्य हार जाता है, भावी तो होकर ही रहती है उसे मिटाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है।"

बड़े स्नेह से तक्षक ने कहा--"ब्रह्मन्! आप तो भावी को भी मेंटने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैंने ऋषि मुनियों से पूछ लिया है राजा की मृत्यु मेरे काटने के ही द्वारा लिखी है ऐसा न होता तो परम धर्मात्मा सत्यवादी शृंगी ऋषि राजा को शाप ही क्यों देते। सूर्य चन्द्र की गति अन्यथा भले ही हो जाय, किन्तु ब्राह्मण के वाक्य अन्यथा नहीं हो सकते। राजा की मृत्यु मेरे काटने से होगी ही। फिर आप व्यर्थ में अपनी हँसी क्यों कराना चाहते हैं। वहाँ आपको सफलता न मिलेगी।"

क्रोध में भर कर ब्राह्मण ने कहा—"बस, ऐसी बात आप मुख से न निकालें। सफलता तो मेरी है, मिलेगी क्यों नहीं। मेरी विद्या और व्यर्थ हो जाय। यह असम्भव है।"

धैर्य के साथ तक्षक ने कहा—"ब्रह्मन्! आप ही तो कहते हो कि प्रारब्ध को कोई मेंट नहीं सकता। होनी होकर ही रहेगी अच्छा, मान लो आपकी विद्या सफल ही हो जाय, तो भी राजा तो बच नहीं सकता। राजा मर गया तो आपकी अपकीर्ति भी होगी, धन भी न मिलेगा। वहाँ धन मिलने में सन्देह है। आपको धन की आवश्यकता है, तो जितना धन आप चाहें, उतना धन मैं देने को तैयार हूँ, बोलिये कितना धन आपको चाहिये। जितना आप कहेंगे उसका दशगुना धन मैं आपको दूँगा।"

ब्राह्मण ने कहा—"धन तुम दे भी दो, तो राजा नहीं बचेगा।"

दीनता के स्वर में तक्षक ने कहा—"ब्रह्मन्! आप विधि के विधान को मेंटने का व्यर्थ प्रयत्न क्यों करते हैं वहाँ धन मिलने में सन्देह है यहाँ मैं आपको अभी मन माना धन दिये देता हूँ। वहाँ

असफलता होने पर आपकी अपकीर्ति भी हो सकती है। यहाँ न अपकीर्ति है न असफलता। धन आपको मिल ही रहा है। उसे ले जाइये सुख पूर्वक रहिये चैन की वंशी बजाइये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जैसी भवितव्यता होती है वैसे ही सब साधन जुट जाते हैं, वैसी ही सबकी बुद्धि हो जाती है। ब्राह्मण ने सोचा—"गोदी के को छोड़कर पेट के की आशा रखना कौन सी बुद्धिमानी है। तक्षक सत्य ही कह रहा है। राजा की यदि मृत्यु ऐसे ही लिखी है तो उसे कौन टाल सकता है। फिर न धन मिलेगा न यश। यहाँ धन तो मिल रहा है।" यही सोच विचार कर ब्राह्मण बोला—"अच्छी बात है, यदि तुम मुझे यथेष्ट धन दे दोगे, तो मैं नहीं जाऊँगा।"

यह सुन कर तक्षक को बड़ा सन्तोष हुआ उसने ब्राह्मण को यथेष्ट धन देकर लौटा दिया और वह राजा को डसने ब्राह्मण का रूप रखकर चल दिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! देखो, भगवान् की माया कैसी प्रबल है यदि कश्यप ब्राह्मण धन के लोभ में न आता, तो तक्षक कभी भी सफल नहीं हो सकता था, धर्मात्मा राजा परीक्षित् बच जाते, किन्तु भवितव्यता को अन्यथा कौन कर सकता है, होनी सब कुछ करा लेती है, ब्राह्मण तो धन लेकर चला गया तक्षक राजा को काटने को पहुँच गया।"

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! इतना सब प्रबन्ध होने पर भी तक्षक ने राजा को कैसे काटा? कृपया राजा के शरीर त्याग का वृत्तान्त हमें सुनावें।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है मुनियो! अब मैं आपको महाराज परीक्षित् के देह त्याग का ही वृत्तान्त सुनाता हूँ, आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

तक्षक पूछे—"आप पधारे द्विजवर! कित कूँ।
तक्षक नृप कूँ डसे उतारें ताके विष कूँ॥
बोल्यो तक्षक—"आपु मंत्र बल मोइ दिखावें।
काटि भस्म वट करूँ मन्त्र तैं आपु जिवावें॥
स्वीकारयो जब विप्र ने, भस्म गरलतें वट करयो।
करयो विप्र ने मंत्र तें, फिरि ज्यों को त्यों तरु हरयो॥

परीक्षित् देहत्याग तथा जनमेजय कोप

(१३५६)

द्विजरूप प्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशनृपम् ।
ब्रह्मभूतस्य राजर्षे र्देहोऽहि गरलाग्निना ॥
बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्व देहिनाम् ॥*

(श्री भा० १२ स्कं० ६ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

निरख्यो मंत्र प्रभाव अधिक आदर अहि कीन्हों ।
विविध भाँति समुझाइ बहुत धन द्विज कूँ दीन्हों ॥
धन लै द्विज फिरि गयो नृपति ढिँग तक्षक आयो ।
तज्यो यथारथ रूप विप्र को वेष बनायो ।
फल में कीड़ा बनि घुस्यो, डस्यो भूपकूँ भूल में ।
भयो भस्म तनु भूप को, मिली धूरि पुनि धूरि में ॥

शरीर तो जो भी उत्पन्न हुआ है, उसका नाश होगा, चाहे वह ब्रह्मा का शरीर हो, चाहे इन्द्र का अथवा कीट पतंग का। उत्पन्न होने वाले की मृत्यु ध्रुव है, फिर भी शरीर त्यागने के अनन्तर

---

*सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! तक्षक ने ब्राह्मण के वेष में अपने को छिपा कर महाराज परीक्षित् को डस लिया। ब्रह्म भूत राजर्षि परीक्षित् का शरीर सब के देखते देखते सर्प की विषाग्नि से जलकर भस्मीभूत हो गया।"

जिनकी कीर्ति अक्षुण्ण बनी रहे, देह धारण करना तो उन्हीं का सार्थक है। राजा भगीरथ न जाने कब उत्पन्न हुए थे किन्तु उनकी लायी हुई गंगा जी अभी तक विद्यमान हैं जब तक भागीरथी गंगा हैं तब तक उनका नाम अजर अमर बना रहेगा। राजानिमि न जाने कब पैदा हुए, किन्तु जब तक प्राणधारी पलक मारेंगे। निमेष का काल—नेत्र मीलन उन्मीलन—रहेगा तब तक निमि का नाम निरन्तर लिया जाता रहेगा। इसी प्रकार महाराज परीक्षित् न जाने कब हुए। कब उन्होंने शमीक ऋषि के कंठ में मृतक सर्प को डाला। कब उनके पुत्र शृंगी ने उन्हें शाप दिया। कब तक्षक ने आकर उन्हें काटा, किन्तु जब तक श्री मद्भागवत् धराधाम पर रहेगी, तब तक महाराज परीक्षित् भी अजर अमर बने रहेंगे। वे पांच भौतिक शरीर तो थे नहीं। शरीर तो पंचभूतों का था, पञ्चभूतों में उसे मिलना ही था। दश दिन पहिले मिला या दश दिन पश्चात् उसका तो यही परिणाम होना था, किन्तु वे ब्रह्मभूत होने से अब भी हैं और सदा इसी प्रकार बने रहेंगे। महा पुरुष कभी मरते नहीं।

सूत जी कहते हैं--"मुनियो ! तक्षक ने विषहारी कश्यप ब्राह्मण को बहुत-सा धन दिया। धन लेकर ब्राह्मण तो अपने घर को लौट गया अब तक्षक बड़ी सावधानी से राजा परीक्षित् को काटने चला। गंगा किनारे पहुँच कर तक्षक ने देखा कि महाराज जनमेजय ने तो ऐसा सुदृढ़ प्रबन्ध कर रखा है, कि प्राणधारियों की तो बात ही क्या वायु भी राजा के समीप स्वेच्छा से नहीं पहुँच सकती। यहाँ तक कि आशीर्वाद देने के लिये जितने ब्राह्मण आये थे उन्हें भी अभी रोक रखा है। राजा के समीप कोई जा ही नहीं सकता था। वन से बहुत से ब्राह्मण फल लेकर राजा को आशीर्वाद देने को आये थे, उन्होंने आग्रह किया हम तो राजा के समीप जायँगे ही। जनमेजय ने उन्हें जाने की आज्ञा दे दी,

क्योंकि सूर्यास्त होने में अब कुछ ही पलों की देरी थी। आज का दिन बीत गया, तो राजा बच गये। मुनि पुत्र की मर्यादा सात ही दिन की थी, सो सात दिन पूरे हो ही गये। ब्राह्मण गण तीर्थों का जल तथा सुन्दर फल लेकर राजा के समीप जाने लगे। तक्षक ने इसी को उपयुक्त समय समझा। वह ब्राह्मण तो बना ही था अत्यन्त कौशल से उन ब्राह्मणों के झुड मे मिल गया और भीतर चला गया।

ब्राह्मणों को आते देख कर महाराज परीक्षित् परम प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणों को अभ्युत्थान दिया-खड़े होकर उनका स्वागत किया तथा कुशल प्रश्न किया। ब्राह्मणों ने परम धर्मात्मा उत्तरानन्दन अभिमन्युसुत राजर्षि परीक्षित् को आशीर्वाद दिये और उनके सम्मुख फल रख दिये। उसी समय काम रूप तक्षक ब्राह्मण का वेष छोड़ कर एक कीड़ा बन गया और एक सुन्दर से फल में चिपक कर बैठ गया। नाग जाति के सर्पों का स्वभाव होता है, कि जब तक कोई काटने को न कहे, तब तक ये काटते नहीं। महाराज नल को भी इसी कौशल से काटा था। उन से कहा—"राजन् आप कुछ पैर चलें और गिनते हुए मुझे बताते चलें जब राजा, एक, दो तीन ऐसे गिनते हुए दश संख्या पर पहुँचे और कर्कोटक नाग से 'दश' कहा तो 'दश' का अर्थ काटना भी होता है। कर्कोटक ने उन्हें काट लिया। इसी प्रकार कुछ नाग ऋषियों को काटने जाते थे। दशनाग मुनि का वेष बना लेते थे और किसी ऋषि से पूछते-ये कितने मुनि हैं।" वे सीधे सादे स्वभाव से कह देते—दश' तुरन्त नाग उन्हें काट लेते।

तक्षक भी जब तक महाराज परीक्षित् न कहें तब तक वह काट नहीं सकता था। राजा काटने को कहते क्यों। इसीलिये तक्षक बहुत ही चमकीला कीड़ा बन गया।

राजा ने उस सुन्दर फल मे ऐसा चमकीला कीड़ा चिपटा

देखकर सहज स्वभाव से उस फल को उठा लिया और कुछ देर तक उसे हाथ से उछालते रहे। उस चमकीले कीड़े को देख कर राजा बड़े आश्चर्य चकित हो रहे थे। उन्होंने खेल खेल में ही उस कीड़े को फल से हटाकर अपने हाथ पर रख लिया और कहने लगे—"यह कैसा कीड़ा है।" आज मुझे काटने तक्षक आने वाला था, सो वह तो आया नहीं। तक्षक के स्थान पर यह कीड़ा ही मुझे काटे, जिससे मुनि पुत्र का वचन अन्यथा न होने पावे।" यह कह कर उन्होंने काटने को ज्यों ही कीड़े को अपने कण्ठ के पास लगाया, त्यों ही वह कीड़ा तक्षक बन गया और तुरन्त राजा को काट लिया। तक्षक के काटते ही, सब के देखते राजर्षि महाराज परीक्षित् का शोभायमान शरीर नाग को विषाग्नि से जलकर भस्म हो गया। ब्राह्मणों ने हाय हाय शब्द किया। सुनते ही तुरन्त इधर उधर से लोग जुट आये। कामरूपी तक्षक वहाँ से गुप्त रूप रख कर भाग गया। पृथिवी में, आकाश में तथा दशों दिशाओं में सर्वत्र हाहाकार मच गया। क्षण भर में यह बात सर्वत्र फैल गयी, कि महाराज परीक्षित् का देहावसान हो गया, उन्होंने अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। देवता, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, नाग तथा समस्त प्राणी आश्चर्यचकित हो गये। देवता आकाश में दुन्दुभी बजाने लगे, कल्प वृक्ष के सुमनों की वर्षा करने लगे, अप्सरायें नाचने गाने लगीं। स्वर्गीय सुरगण साधु साधु, धन्य धन्य जय हो जय हो ऐसे शब्द कहने लगे। राज्य में सर्वत्र शोक छा गया। ब्रह्म भूत राजर्षि परीक्षित् ने शरीर त्याग कर परमोत्तम गति को प्राप्त कर लिया।

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! महाराज परीक्षित् के देह त्याग के अनन्तर उनके पुत्रजनमेजय ने क्या किया, कृपया उस वृत्तान्त को आप हमें सुनावें।"

सूत जी बोले—"महाराज! राजर्षि परीक्षित् का देहावसान

क्या हुआ, आर्यावर्त का सूर्य ही अस्त हो गया। ब्रह्मन् सर्प निकल जाने के अनन्तर जिस प्रकार उसका लोक को पीटते रहने से कोई लाभ नहीं होता, उसी प्रकार जो दैवेच्छा से घटना हो गयी वह हो ही गयी, अब उसके प्रतिकार के लिये जो भी किया जाय, उससे महाराज परीक्षित लौट कर तो आ ही नहीं सकते। फिर भी अपने स्वजनों के निधन से दुःख होता ही है। यद्यपि महाराज जनमेजय उस समय बालक ही थे, किन्तु फिर भी उन्हें नागों पर बड़ा क्रोध आया। महाराज परीक्षित के अनन्तर कुरु कुल के राज्यसिंहासन पर वे बैठे। मन्त्रियों की सहायता से वे राज्यकाज करने लगे। काशी नरेश की वपुष्टमा नाम की परम सुकुमारी राजकुमारी के साथ उन्होंने विवाह किया। जब वे भली प्रकार प्रजा के प्रेम का भाजन बन गये और सब राजा उनकी अधीन हो गये, तब उन्होंने अपने पितृघाती नागों से बदला लेने का निश्चय किया। उन्होंने मंत्रियों से पूछा--"तक्षक का मेरे पिता ने क्या अपकार किया था, उनको उस दुष्ट ने क्यों डसा ?"

मंत्रियों ने कहा--"राजन्! आपके धर्मात्मा पिता ने तक्षक का या अन्यनागों का कुछ भी अपकार नहीं किया था। शमीक मुनि के पुत्र परम क्रोधी शृंगी ऋषि ने शाप दिया था, इसीलिये तक्षक काटने आया था। मार्ग में तक्षक को विष उतारने वाले कश्यप ब्राह्मण भी मिले, उन्हें भी तक्षक ने बहुत-सा धन देकर समझा बुझा कर लौटा दिया।"

महाराज जनमेजय ने पूछा--"कश्यप को तक्षक ने क्यों लौटाया ? वह अपना काम करता, कश्यप को अपना काम करने देता।"

मंत्रियों ने कहा--"महाराज! तक्षक की दुष्टता ही है, नहीं तो कश्यप को लौटाने का तो कोई कारण नहीं था। उसने सोचा

होगा, कि मेरे काटे को कश्यप अच्छा कर देगा, तो संसार में मेरी अपकीर्ति होगी, लोग मुझे निर्वीर्य समझेंगे। जब तक्षक ने देखा कि इतने भारी विशाल वट वृक्ष को-जिसे स्वयं तक्षक ने ही काट कर भस्म कर दिया था—कश्यप ने मंत्र प्रभाव से बात की बात हरा भरा ज्यों का त्यों कर दिया, तब तो तक्षक घबड़ा गया और अनेक युक्तियों से कश्यप को लौटा दिया।"

जनमेजय ने पूछा—"अच्छा, यह बताओ कश्यप और तक्षक की बात तो घोर बन में-एकान्त स्थान में-हुई थी, आप लोगों को यह वृत्तान्त कैसे विदित हुआ ?"

मंत्रियों ने कहा—"महाराज ! उस वट वृक्ष पर एक गड़रिया चढ़कर लकड़ी तोड़ रहा था, जब तक्षक ने उस वट वृक्ष को काट कर भस्म कर दिया था, तब वृक्ष के साथ ही, वह गड़रिया भी भस्म हो गया था। जब कश्यप ब्राह्मण ने मंत्र बल से उस भस्म हुए वृक्ष को फिर हरा भरा कर दिया, तो वह गड़रिया भी जी पड़ा। उसी ने आकर हमें तक्षक और कश्यप की सब बातें सुनायीं वृक्ष पर चढ़ा चढ़ा वह सब सुन रहा था।"

जनमेजय ने कहा—"तब तो यह सब नीचता तक्षक की ही है, तक्षक को मुनि पुत्र के शाप के कारण काटना ही था, तो काट कर ही चला जाता। उसे कश्यप को लौटाने की क्या आवश्यकता थी। जिसने विष से भस्म हुआ वट वृक्ष को पुनः ज्यों का त्यों हरा भरा कर दिया। उसके ऊपर के गड़रिये को ज्यों का त्यों जिला दिया, वह मेरे पिता को भी जीवित कर सकता था। यह सब सब तक्षक की ही नीचता है। अच्छा, यह बताओ जिन ब्राह्मणों के साथ मिल कर वह मेरे पूज्य पिता जी के समीप गया था, वे ब्राह्मण कौन थे ?"

मंत्रियों ने कहा—"अजी, महाराज ! वे लोग ब्राह्मण थोड़े ही थे, इस बात का तो हमें पीछे पता चला। इस तक्षक ने ही बहुत

से लोगों को ब्राह्मण वेष बना कर फल, मूल, जल तथा कुशा लेकर भेजा था। स्वय एक फल में चिपक कर बैठा था।"

यह सुन कर क्रोध में भर महाराज जनमेजय ने कहा—"अच्छा, यह सब षडयन्त्र नागों का ही है।"

मन्त्रियों ने कहा—"हॉ, महाराज! नागों का ही तो यह सब षडयन्त्र है। धर्मात्मा शमीक मुनि के दिव्य आश्रम में मरे सर्प का क्या काम वह तक्षक ही वहॉ मृत सर्प बन कर पड गया था। ये नाग महाराज के पीछे पड गये थे।"

इस पर महाराज जनमेजय को क्रोध के कारण ऑखें लाल हो गयीं। वे कुछ देर तक सोचते रहे और फिर बोले—"मैं इन दुष्ट नागों का विनाश करना चाहता हूँ, मैं अपने पिता का बदला लेना चाहता हूँ। इसके लिये मैं अभिचार यज्ञ करना चाहता हूँ। ब्राह्मणों को बुलाओ और उनसे पूछो, ऐसा कोई अभिचार यज्ञ वेदों में हो तो हमें बतावें।"

राजा की आज्ञा पाकर मन्त्रियों ने अभिचार यज्ञों में निष्णात बडे बडे विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाया और उनका यथोचित आदर करके पूछा—"ब्राह्मणो! मैं अपने पिता के वध करने वाले नागों का विनाश करना चाहता हूँ, आप कोई ऐसा मारण यज्ञ जानते हैं, तो मुझे बतावें।"

ब्राह्मणों ने कहा—"राजन्! आपके पिता को सर्प काटेगा, इस बात का ब्रह्मा जी को प्रथम ही पता था, इसीलिये उन्होंने वेदों में एक सर्प यज्ञ का विधान किया है, इस यज्ञ को आपके अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता। आप इस घोर अभिचार यज्ञ को करावें तो सभी नाग अपने आप विवश होकर यज्ञ कुंड में आकर भस्म होते जायँगे।'

उल्लास के साथ महाराज जनमेजय ने कहा—"ब्राह्मणो! इस यज्ञ को आप अवश्य करावें। मैं इसे करूँगा, इसमें जो भी

सामग्री लगे उसे तुरन्त लिखाओ। मंत्रियों से कह कर सब सामग्री एकत्रित करो। बड़ा भारी विशाल यज्ञ मंडप बनाओ। मुझे इन समस्त नागों को भस्म करना है।" राजा की आज्ञा होते ही एक विशाल यज्ञ मंडप बनाया गया और सर्प सत्र की सभी सामग्रियाँ शीघ्रता के साथ जुटायीं गयीं। अन्य यज्ञों में याजक श्वेत या पीत वस्त्र धारण करते हैं, किन्तु यह क्रूर अभिचारिक यज्ञ था, इसलिये सब याजक काले वस्त्र पहिने हुए थे। यज्ञ वेदी बन जाने के अनन्तर राजा ने विधिवत सर्प यज्ञ की दीक्षा ली। उसी समय पौराणिक एक सूत पुत्र सूत्रधार वहाँ आया। उसने यज्ञ वेदी को देखकर राजा जनमेजय से कहा—"राजन्! आपके इस यज्ञ के पूर्ण होने में सन्देह है?"

राजा तो आश्चर्य चकित हो गये, उन्होंने सर्व शास्त्र निष्णात उसे पुराण वेत्ता से पूछा—"सन्देह की कौन सी बात है। मेरे पास विपुल धन है, यज्ञ की सभी सामग्रियाँ हैं। मेरे होता ऋत्विज् शास्त्र निष्णात तथा विधि विधान को जानने वाले हैं। इसमें त्रुटि क्या है।"

सूत्रधार ने कहा—"राजन्! आपको सामग्री की कमी नहीं है। आप का यज्ञ अविधिपूर्वक होगा, ऐसी भी बात नहीं है। आप सर्व साधन सम्पन्न हैं। किन्तु जिस स्थान में और जिस मुहूर्त में यज्ञ वेदी की भूमि नापी गयी है, उससे यही प्रतीत होता है, कि यह सम्भवतया पूर्ण न होने पावे।"

राज ने चिन्तित होकर पूछा—"किसके द्वारा सन्देह है?"

सूत्रधार ने कहा—"सम्भव है कोई ब्राह्मण आकर इस यज्ञ को बन्द करा दे।"

राजा ने दृढ़ता के साथ कहा—"अच्छा इसका प्रबन्ध मैं अभी करता हूँ।" यह कह कर उन्होंने यज्ञ वेदी के चारों ओर सशस्त्र सैनिक खड़े कर दिये। द्वारपालों को कठोर आज्ञा दे दी,

कि मेरी आज्ञा के बिना कोई भी अपरिचित व्यक्ति भीतर न आने पावे।

इस प्रकार सभी रक्षा के प्रबन्ध करके राजा ने ऋत्विजों से यज्ञ आरम्भ करने को कहा। ब्राह्मण गण अभिचार विधि से मंत्र पढ़ पढ़कर अग्नि में आहुतियाँ देने लगे और मंत्रों द्वारा नागों का आह्वान करने लगे। उन सब के मंत्र अमोघ थे। वे कभी व्यर्थ जाने वाले नहीं थे। मंत्रों के प्रभाव से जो नाग जहाँ भी होता वहीं खिंचकर चला आता और आकर यज्ञ कुन्ड में गिर जाता तथा तड़प तड़प कर अग्नि में भस्म होता। इस प्रकार सहस्त्रों लाखों सर्प उस यज्ञ कुन्ड मे भस्म हो गये। बड़े बड़े आकार वाले सर्प मंत्र बल से खिंचे हुए आते और अवश होकर यज्ञ कुन्ड मे जल जाते उनकी मांस बसा की गंध चारों ओर फैल गयी।"

तक्षक को भी यह बात मालूम हुई। वह सर्प यज्ञ की बात सुनकर बहुत डर गया। आत्म रक्षा के लिये, वह कामरूपी नाग दौड़ा दौड़ा इन्द्र के समीप गया और दीन वाणी में बोला—"देव-राज! मेरी रक्षा कीजिये। मुझे बचाइये।"

इन्द्र ने धैर्य के साथ पूछा—"नागराज! तुम इतने भयभीत क्यों हो रहे हो, अपने दुःख का कारण बताओ। तुम मेरे मित्र हो, मैं सब प्रकार से तुम्हारी सहायता करूँगा।"

तक्षक ने कहा—"हे सुरेन्द्र! महाराज जनमेजय सर्प यज्ञ कर रहे हैं, मेरी जाति के लाखों नाग उसमें भस्म हो गये। उनकी बसाकी वहाँ एक नदी-सी बह गयी है। अब मुझे भी ब्राह्मण गण मंत्रों के द्वारा आकर्षण करेंगे। मुझे भी अवश होकर मंत्र प्रभाव से जाकर यज्ञ कुन्ड मे भस्म होना पड़ेगा।"

यह सुन कर देव राज ने कहा—"तक्षक! तुम सुख पूर्वक मेरे भवन मे—मेरे समीप रहो। तुम्हारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! इन्द्र से अभय पाकर तक्षक वहीं इन्द्रपुरी में रहने लगा। अब जिस प्रकार राजा जनमेजय तक्षक को भस्म करने को ब्राह्मणों से कहेंगे वह वृत्तान्त मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

जग में हाहाकार मच्यो सब अश्रु बहावैं।
भये चकित सुर वृन्द सुमन नभ तैं बरसावैं॥
साधु साधु सब कहैं धन्य कुरुकुल के भूषन।
भये मुक्त सुनि कथा मिटयो द्विजकृत-अघ दूषन॥
जनमेजय नृप-के तनय, कुपित नाग कुल पै भये।
सर्प सत्र करि बे लगे, नष्ट नाग बहु करि दये॥

—::०::—

सर्प सत्र की समाप्ति

(१३५७)

अति वादांस्तितिक्षेत नावमन्येतकश्चन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ६ अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

विप्र मंत्र जब पढ़ें सर्प चहुँदिशि तैं आवैं।
होहिँ विवश अति बली कुन्ड में गिरि मरि जावैं॥
तक्षक ह्वै भय भीत शरन सुरपति की लीन्ही।
च्यौं नहिँ तक्षक मरै नृपति जिज्ञासा कीन्ही॥
रक्षा सुरपति करतु है, जब विप्रनि उत्तर दियो।
इन्द्र सहित स्वाहा करो, सुनत स्रुवा द्विज कर लियो॥

क्रोध पाप का मूल है, फिर भी किसी कारण से किसी पर क्रोध आ जाता है, तो वह सरलता से छुटता नहीं। क्रोध के वशी भूत होकर प्राणी अपने से बड़ों का अपमान तक कर डालता है।

---

*सूत जी कहते हैं—"मुनियो! परम पद पाने की इच्छा वाला दूसरों के कठोर वचनों को सहन करे, कभी भी किसी का अपमान न करे और इस देह के कारण किसी से वैर भी न करे।"

क्रोध में भी जो बड़े लोगों की शिक्षा को शिरोधार्य करते हैं, जैसा वे कहते हैं वैसा अपनी इच्छा के विरुद्ध होने पर भी करते हैं, वे महा पुरुष हैं, उनकी कीर्ति संसार में फैल जाती है। अपने से श्रेष्ठ पुरुष जिस बात पर बल दें नाना युक्तियों से समझावें यदि वह बात भगवत् भक्ति में पूर्णरीत्या बाधक न हो, तो उसे अवश्य ही करना चाहिये।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! राजा जनमेजय के सर्प यज्ञ में जब बड़े बड़े लंब तड़ंगे सर्प स्वतः आ आ कर भस्म होने लगे। महाराज इस प्रतीक्षा में थे कि अब मेरे पिता को मारने वाला क्रूर कर्मा तक्षक भी आवेगा। और वह भी भस्म होगा, किन्तु जब वहाँ बहुत देर तक तक्षक नहीं आया तो राजा ने ब्राह्मणों से पूछा—"ब्राह्मणों! आप अन्य नागों को तो अपने मंत्रों से बुलाते हैं, किन्तु नीच तक्षक को नहीं बुलाते। उस सर्पाधम को बुला कर अग्नि में स्वाहा कीजिये। उसे जलते देख कर मुझे अत्याधिक आनन्द होगा।"

ब्राह्मणों ने चिन्तित होकर कहा—"हे राजेन्द्र तक्षक के आने में एक अन्तराय-विघ्न उपस्थित हो गया है।"

राजा ने पूछा—"वह अन्तराय क्या है?"

ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज! वह सर्पाधम इन्द्रलोक चला गया। देवेन्द्र उसकी रक्षा कर रहे हैं।"

जनमेजय ने कहा—"क्या आप लोग अपने मंत्रों के प्रभाव से उसे इन्द्रलोक से नहीं बुला सकते?"

ब्राह्मणों ने दृढ़ता के स्वर में कहा—"बुला क्यों नहीं सकते हैं महाराज! किन्तु इन्द्र उसे शरण में आया हुआ समझ कर सब प्रकार से उसकी रक्षा कर रहे हैं। वह उनके सिंहासन के पाये में लिपटा हुआ है। उसका आह्वान करें तो साथ में इन्द्र भी सिंहासन सहित चला आवेगा।"

राजा ने कहा—"क्या हानि है, इन्द्र चला आवे तो अच्छा है। शत्रु का मित्र भी शत्रु के समान ही होता है। जब इन्द्र हमारे संकल्प में विघ्न डाल रहा है, हमारे काम मे रोड़े अटका रहा है, तो उसे भी भस्म कर देना न्याय संगत है। आप निर्भय होकर मंत्र पढ़ें और इन्द्र के सहित तक्षक को अग्नि मे जला दें।"

ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज! हम सब कुछ कर सकते हैं, हमारे मंत्रों का प्रभाव अव्यर्थ है। आपकी आज्ञा की ही देरी थी, लीजिये हम इन्द्र सहित तक्षक को अभी बुलाकर सब के सम्मुख दोनों को स्वाहा करते हैं।" यह कह कर ब्राह्मणों ने हाथ मे स्रुवा लिया और इन्द्र के सहित तक्षक का उस सर्प सत्र में आवाहन किया। सब ने सस्वर इस आशय का मंत्र पढ़ा कि उनंचास मरुद् गणों के साथ रहने वाले इन्द्र के सहित तक्षक अभी आकर अग्नि में गिरे।"

यह मंत्र पढना था, कि इन्द्र का सिंहासन विचलित हुआ। वह सुधमा सभा से उडकर आकाश मे आया और जैसे आकाश से तारा टूटता है वैसे तक्षक के साथ नीचे गिरते हुए इन्द्र को सबने देखा। देवताओं के गुरु बृहस्पति जी ने जब देखा कि यह तो बड़ा अन्धेर हो रहा है। इन्द्र अग्नि में स्वाहा हो गया, तो तीनों लोक इन्द्रहीन हो जायँगे। संसार की मर्यादा न रहेगी।" यही सब सोच कर वे तुरंत योगबल से राजा जनमेजय के यज्ञ में आये। अपने मंत्र प्रभाव से उन्होंने इन्द्र को सिंहासन और तक्षक सहित आकाश में ही रोक रखा फिर वे शीघ्रता के साथ राजा जनमेजय से बोले—"राजन्! आप यह बहुत अनुचित कर रहे हैं। जो इन्द्र तीनों लोकों के राजा हैं, उनको इस प्रकार आपको यज्ञ कुंड में जलाना न चाहिये।"

हाथ जोड कर जनमेजय ने कहा—'महाराज! मेरा कोई

इन्द्र से वैर थोड़ा ही है। इन्द्र तक्षक को छोड़ दें, मैं उन्हें न बुलाऊँगा। मैं तो तक्षक को मारना चाहता हूँ।"

देव गुरु बृहस्पति जी ने कहा—"तक्षक के पीछे आप क्यों पड़े हैं, राजेन्द्र ?"

जनमेजय ने रोष में भर कर कहा—"महाराज उसने मेरे पिता को मारा है, मैं उसे छोड़ नहीं सकता। अपने पिता की मृत्यु का बदला मैं अवश्य लूँगा।"

बृहस्पति जी ने बड़े प्रेम से जनमेजय के कंधे पर हाथ रख कर कहा—"अरे, भैया ! तुम इतने बुद्धिमान होकर ऐसी बच्चों की-सी बातें करते हो। देखो, भैया। बिना मृत्यु के कौन किसे मार सकता है। जीवों का जीवन, मरण तथा सद्गति और दुर्गति अपने कर्मों के द्वारा होती है। दूसरे जन्म में जिसे हमने दुःख दिया है, वह शत्रु, मित्र तथा पुत्रादि बन कर हमें दुख देगा। दूसरे जन्मों में जिसे हमने मारा है, वह मृत्यु का कारण बन कर हमें मारेगा। सुख दुख देने वाला कोई दूसरा नहीं है। अपने ही कृत कर्मों से सुख मिलता है और अपने ही कर्मों से दुख।"

राजा जनमेजय ने कहा—"भगवान् ! सर्पादि के द्वारा काटने से मृत्यु होती है, उसे तो अकाल मृत्यु कहते हैं।"

बृहस्पति जी अपनी बात पर बल देते हुए बोले—"भैया ! अकाल में कभी कोई काम होता ही नहीं सब काम काल से ही होता है। अकाल में मृत्यु हो कैसे सकती है। जिसकी जिसके द्वारा जब जैसे मृत्यु बदी होगी उसकी उसके द्वारा तभी तैसे ही मृत्यु होगी। अकाल मृत्यु का अर्थ है। बिना अवसर के मृत्यु। जैसे कोई २५ वर्ष का युवक है, उसे सर्प ने डस लिया तो उसकी अकाल मृत्यु हो गयी। अर्थात् उसके मरने का यह समय नहीं था, किन्तु उसकी मृत्यु ऐसी ही बदी थी। वह २५ वर्ष से एक

पल भी अधिक नहीं जी सकता था। उसके मरने का यह समय निश्चित था। मृत्यु प्रत्यक्ष नहीं आती। वह कभी सर्प का रूप रख लेती है। कभी, स्त्री का, कभी चोर का, कभी अग्नि का, कभी बिजली का कभी क्षुधा, पिपासा तथा व्याधि का रूप बना लेती है। मृत्यु किसी को कारण बना कर मारती है। काल किसी को प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर नहीं होता। जहाँ जिसका काल आ जाता है, वहीं उसकी मृत्यु का कोई न कोई कारण उपस्थित हो जाता है। काल ही अनेक रूप रख कर कारण बन जाता है।"

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! काल कैसे नाना रूप रख लेता है ?"

सूत जी ने कहा—"महाराज! संसार में कौन सी ऐसी वस्तु है जिससे मृत्यु का भय न हो। संसार में पग पग पर भय है। सभी के द्वारा मृत्यु हो सकती है। लोग कहते हैं अमुक आदमी खुले में था इसलिये बिजली गिरने से मर गया यदि सुरक्षित स्थान में होता तो न मरता। यदि सुरक्षित स्थान में ही मृत्यु से बच जाय, तो समुद्र के भीतर सहस्रों हाथ नीचे जल में मछलियां रहती हैं उनकी मृत्यु न हो। हिम प्रधान द्वीपों में भालू हिमखंडों के नीचे रहते हैं, वहाँ भी मृत्यु पहुँच जाती है। नाना रूपों में काल ही क्रीडा कर रहा है। इस विषय में एक बड़ी सुन्दर कथा है।"

एक राजा था। उसने महाकालेश्वर शिव जी की बहुत दिनों तक आराधना की। आशुतोष भगवान् महा कालेश्वर ने उसकी आराधना से सन्तुष्ट होकर उसे दर्शन दिया और वर माँगने को कहा। राजा ने हाथ जोड़ कर विनती की—"प्रभो! आपकी लीला दुर्निवार है, मैं आपकी लीला प्रत्यक्ष देख सकूँ ऐसा वर मुझे दीजिये।"

तथास्तु, कह कर भगवान् भूतनाथ अन्तर्धान हो गये। कुछ

काल के पश्चात् एक दिन राजा रात्रि में वेष बदल कर घूम रहे थे, कि उन्हें हाथ में अस्त्र लिये एक चोर दिखायी दिया। राजा छिप कर उसके पीछे लग गये। आगे एक व्यक्ति सुवर्ण की कुछ मुद्रायें छिपा कर जा रहा था, उस चोर ने क्षण में उसका सिर धड़ से पृथक कर दिया। राजा ज्यों ही उसे पकड़ने दौड़े कि वह चोर सर्प बन गया।"

राजा बड़े आश्चर्य में पड़ गये। वे उस सर्प के पीछे चले, सर्प एक नदी के निकट पहुँच कर ठहर गया। राजा भी एक ओर छिप गये। इतने में ही मनुष्यों से भरी एक नौका आयी सर्प दौड़ कर उस पर चढ़ गया। सर्प को देखकर उस नौका के यात्रियों में भगदड़ मच गयी। सब एक ओर हो गये नौका उलट गयी सब यात्री मर गये। सर्प वहाँ से उतरा बालू में आकर लोटने लगा तुरंत सर्प से वह एक बड़ी ही सुन्दरी स्त्री बन गयी। दिन निकल आया था स्त्री एक ओर चल दी। राजा भी उसके पीछे पीछे चल दिया। आगे दो भाई आते हुए दिखायी दिये। वे सैनिक थे अवकाश में घर जा रहे थे। वे एक कूए के पास बैठे वह स्त्री भी वहाँ बैठ गयी और बड़े भाई की ओर कुटिल कटाक्षों से देखने लगी। अब तो उस सैनिक का भी साहस हुआ। उसने पूछा—'देवि! तुम कौन हो?'

उस स्त्री ने कहा—" क्या बताऊँ मैं तो विपत्ति की मारी हूँ। मेरे माता पिता महामारी में मर गये। मैं अनाथ हुई किसी आश्रय की खोज में भटक रही हूँ।"

इतनी सुन्दरी युवती को देखकर उस सैनिक का चित्त चंचल हो उठा। उसने बड़े स्नेह से कहा—"देवि! हम सब प्रकार से तुम्हारी सहायता करने को तत्पर हैं। तुम हमारे साथ चलो।"

उसने लजाते हुए कहा—'मैं तो यह चाहती ही हूँ, मुझे कोई अपना ले। तुम लोग तो बली हो कुलीन हो क्षत्रिय प्रतीत होते

हो, मेरी जाति के ही हो, किन्तु मुझे भूख बहुत लगी है, तीन दिन से मैंने कुछ खाया नहीं पहिले मुझे कुछ खाने को दो।"

यह सुन कर बड़े भाई ने कहा—"नगर यहाँ से बहुत दूर नहीं मैं, अभी तुम्हारे लिये मिठाई लाता हूँ।" यह कह कर वह शीघ्रता से मिठाई लेने चला गया।"

उसके चले जाने पर वह स्त्री उस छोटे से बोली—"सुनते हो, लाला जी! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।"

उसने कहा—"देवि! तुम कैसी धर्म के विरुद्ध बातें करती हो। तुमको मेरे भाई ने अपना लिया, तुम मेरी भाभी हुई बड़ी भाभी माता के समान होती है।"

इस पर वह बोली—"तुम बड़े भोले हो। अजी मेरा उनसे कोई विवाह तो हुआ नहीं। जब तक विवाह नहीं होता, कन्या की कितने वरों से बात चीत चलती है। जिससे बात चीत चले यदि वही वर बन जाय तब तो अनर्थ ही हो जाय। सैकड़ों वर बन जाते हैं। माता पिता बहुतों से बात करते हैं। जिसके साथ अग्नि को साक्षी देकर विवाह हो जाता है। वही पति होता है मेरी और तुम्हारे भाई की तो स्पष्ट बातें भी नहीं हुईं। अब मैं तुम से ही विवाह करना चाहती हूँ।"

इस पर उस छोटे सैनिक ने कहा—"मेरे भाई ने तो मन से तुम्हें वरण कर ही लिया अब मेरे लिये तुम पूजनीया बन गयीं।"

यह सुनकर वह सुन्दरी बोली—'तुम निरे बुद्धू ही रहे। तुम मेरी कितनी अवस्था समझते हो?"

उसने कहा—"यही १५-१६ वर्ष की होगी?"

सुन्दरी ने पूछा—"अच्छा तुम्हारी कितनी है?"

उसने कहा—"मेरी भी २४-२५ वर्ष की होगी।"

सुन्दरी ने पूछा—'तुम्हारे भाई की?"

उसने कहा—"उनकी भी ४५, ५६ की होगी।"

तब हँसते हुए उस सुन्दरी ने कहा—"अब तुम्हीं बताओ १५, १६ वर्ष की सुन्दरी स्त्री २४ २५ वर्ष के युवक के विवाह करना चाहेगी कि ४५-४६ वर्ष के बुड्ढे घूँसट से। तुम भी कितने मूर्ख हो, कि मैं तुम्हें अपनाना चाहती हूँ और तुम मिथ्या धर्म की दुहाई देकर मुझे ठुकरा रहे हो।"

छोटे सैनिक ने कहा—"देवि! तुम काम के वशीभूत होकर ऐसी बातें कर रही हो। मैं अपने भाई की अपनायी हुई वस्तु पर कभी भी चित्त न चलाऊँगा।"

उस स्त्री ने रोष में भर कर कहा—"अच्छी बात है तुम मेरी बात नहीं मानते तो इसका फल चाखो।" यह कह कर वह धूलि में लौट गयी। अपने हाथ अपने कपड़े फाड़ लिये मुख पर नखों से चिन्ह बना लिये और रोने लगी। तब तक बड़ा सैनिक भाई भी आ गया। उस सुन्दरी की ऐसी दशा देखकर वह हक्का बक्का रह गया। उसने पूछा—"क्यों क्यों क्या हुआ? क्या हुआ?"

उस सुन्दरी ने रोष में भर कर कहा—"हुआ क्या पत्थर। तुम्हारा यह छोटा भाई मेरी लाज ही लेना चाहता था। यह मेरे साथ बलात्कार करने को उद्यत था। जैसे तैसे मैंने अपने धर्म को बचाया है।"

यह सुन कर क्रोध से बड़े भाई की आँखें लाल हो गयीं। उसने कहा—"क्यों रे नीच! तू ऐसा पाप करने को उद्यत था।"

इस पर उस भाई ने कहा—"भैया जी! तुम नीच कुलटा स्त्री के बातों में आ गये। यह तो ठगिनी चरित्र भ्रष्टा है। इसे छोड़ो और अपने घर चलो। इस प्रकार मार्ग चलते किसी अनजान स्त्री को न अपनाना चाहिये।"

इस पर रोष में भर कर बड़े ने कहा—"मैं तेरी सब चतुरता समझता हूँ, इस प्रकार मुझे समझा कर तू इसे अपनाना चाहता है।"

वह स्त्री रोते रोते बोली—"यही तो यह मुझसे कह रहा था, कि मैं युवक हूँ, सुन्दर हूँ, उस खूँसट से क्यो व्याह करती हो, मेरे साथ भाग चलो।"

इस पर उस बडे ने कहा—"जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं तब तक एक नहीं लाख ऐसे आ जायें तो भी तुम्हे कोई हम से पृथक नहीं कर सकता। इसने यदि तुम्हारे शरीर से हाथ भी लगाया, तो यह अभी यहीं ढेरी हो जायगा।"

इस पर छोटे भाई को भी क्रोध आ गया। उसने रोष मे भर कर कहा—"तुम इस मार्ग चलती कुलटा वेश्या की बातों का तो विश्वास करते हो, मैं तुम्हारा सगा भाई हूँ मेरी बात का तनिक भी विश्वास नहीं। यह कोई ठगिनी है ठगिनी।"

इस पर बडे भाई ने कहा—"बहुत बकबक मत करे। फिर ऐसी बात मुख से निकाली तो जीभ निकाल लूँगा।" अब क्या था दोनों ही क्रोध मे भर गये। दोनों ने अपनी अपनी बन्दूकें निकाल लीं। उसने उस पर गोली छोडी उसने उस पर दोनों ही मरकर गिर गये। वह स्त्री तुरन्त सन्यासी बन गयी। और नगर की ओर चल दी।"

राजा भी उसके पीछे चल दिये। अब सन्यासीजी जिसे शाप दे देते वही मर जाता। फिर एक क्षण में वही आकाश मे बिजली बनकर उड गये और कुछ लोग काम कर रहे थे उनके ऊपर गिर गये। वे सबके सब मर गये। क्षण भर में वही बिजली से सिंह हो गया। लोगों को पकडकर चबाने लगा। फिर सिंह से सैनिक बन गया और शस्त्र लेकर चला। अब राजा से नहीं रहा गया। राजा ने आगे बढ़कर उसे पकडकर कहा—"मैं जबसे देख रहा हूँ आप अनेक रूप रख लेते हैं और अनेक जीवों को मारते हैं आप कौन हैं ? क्यों निर्दय होकर सबका संहार कर रहे हैं ?"

हँसकर उस व्यक्ति ने कहा—"राजन्! मैं महाकालेश्वर रुद्र ही हूँ। आपकी इच्छानुसार मैंने अपने कुछ रूप दिखाये। नहीं तो मेरे वास्तविक रूप को कोई भी नहीं देख सकता। मैं अनेक रूपों से सबके सम्मुख जीवों का संहार करता हूँ, किन्तु न तो मुझे कोई देखता है न दोष ही देता है। लोग सर्प, चोर, बिजली, अग्नि, क्षुधा, तृषा, सिंह, व्याघ्र, विष तथा रोग आदि का नाम लेते हैं कि इन कारणों से मृत्यु हुई। वास्तव में मैं ही अनेक रूपों में होकर प्राणियों को उनके कर्मानुसार मारता रहता हूँ।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इसी बात को देवगुरु बृहस्पति राजा जनमेजय को समझा रहे हैं, कि राजन्! आपकी पिता की मृत्यु में तक्षक का कोई भी दोष नहीं था यह तो ऐसा होना ही था काल की गति दुर्निवार है। इसलिये आप इस सर्पयज्ञ को बन्द कर दीजिये।"

राजा ने कहा—"भगवन्! मैंने तो प्रतिज्ञा की है, कि मैं बिना सर्पों का नाश किये इस यज्ञ को बन्द न करूँगा।"

यह सुनकर बृहस्पतिजी ने कहा—"राजन्! यदि अनुचित प्रतिज्ञा भ्रमवश कर ली हो, तो उसे त्यागने में ही कल्याण है। आपके पिता को एक तक्षक ने काटा था। इन इतने निरपराध सर्पों ने तो आपका कुछ बिगाड़ा नहीं था। इन सर्पों की मृत्यु भी इसी प्रकार आप के यज्ञ में होनी थी। इन सबको इनकी माता कद्रू का शाप था कि तुम जनमेजय की सर्प यज्ञ में भस्म होंगे। सो, उस शापवश जिनको भस्म होना था वे हो गये। सब मनुष्यों के द्वारा अपना अपना प्रारब्ध ही भोगा जाता है। सबकी मृत्यु का संयोग पहिले से ही निश्चित रहता है। तुम्हारे पिता की मृत्यु का संयोग तक्षक से ही था और इन सर्पों की मृत्यु का संयोग आपके सर्पयज्ञ से ही था प्रारब्धवश जो होना था, सो

हो गया। तत्तक की मृत्यु का सयोग आपके सपसत्र से नहीं है। राजन्! आप लाख प्रयत्न करो तत्तक आपके द्वारा नहीं मारा जा सकता। जब देवता और दैत्यों ने मिलकर मदराचल को रई और नागराज वासुकी को नेति बनाकर समुद्र मथा था और उसमे से अमृत निकाला था, उसे इस तत्तक ने भी पी लिया था। इसीने यह अजर-अमर हो गया है। अब व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं। जो होना था सो हो गया। अब इस हिंसामय दारुण यज्ञ को बन्द करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! देवगुरु बृहस्पतिजी के कहने से महाराज जनमेजय ने उस यज्ञ को बद कर दिया। देवेन्द्र तत्तक के सहित स्वर्गलोक को पुनः लौट गये।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! हमने तो सुना राजा जनमेजय के यज्ञ को आस्तीक मुनि ने बन्द कराया।"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज! आस्तीक मुनिका तो जन्म ही इसी काम के लिये हुआ था। वासुकी नाग को पता था कि माता के शाप से जनमेजय के यज्ञ में सर्प जाति का विनाश होगा और उसे मेरे बहिन जरत्कारु के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही रोक सकेगा। इसीलिये वह अपनी बहिन के लिये किसी महातपस्वी ऋषि की खोज में था।"

इधर जरत्कारु नाम के ऋषि विवाह करना नहीं चाहते थे। जब उन्होंने अपने पितरों की दुर्दशा देखी और पितरों ने उन्ह विवाह करने की आज्ञा दी तो उन्होंने प्रतिज्ञा की यदि मेरे ही नाम की कोई कन्या हो और उसके अभिभावक स्वय ही आकर मुझे कन्या दे तो मैं विवाह कर लूँगा। वासुकी को जब पता चला तो उसने अपनी बहिन जरत्कारू का जरत्कारु मुनि से विवाह कर दिया। जरत्कारु निठल्ले थे कुछ आजीविका तो थी नहीं। अत्यन्त

उग्र स्वभाव के थे, इसलिये वासुकी ने उन्हें घर जमाई रख लिया। वे नागलोक में रहकर जरत्कारु के साथ गृही धर्म का पालन करते थे। इतने तेजस्वी और उग्र थे कि जरत्कारु उनसे डरती रहती। एक दिन वे अपनी पत्नी की जंघा पर सिर रखकर दिन में सो रहे थे। जरत्कारु डरी कि कहीं इनकी सायंकालीन सन्ध्या का लोप हो गया, तो न जाने कितना क्रोध करेंगे।" यही सोचकर उसने शनैः शनैः इन्हें जगाया। जगते ही ये आग बबूला हो गये और डाँटकर पत्नी से पूछा—"हे नागकुमारी तूने मुझे कच्ची नींद में क्यों जगाया। अब मैं तेरे साथ न रहूँगा।"

स्त्री ने अपने को निर्दोष बताया किन्तु मुनि माने नहीं। स्त्री को छोड़कर चले गये। तब वासुकी ने पूछा—"तेरे पेट में मुनि से गर्भ है।"

उसने लजाते हुए कहा—"अस्ति, अस्ति अर्थात् गर्भ है।"

उसी से जो पुत्र हुए वे आस्तीक मुनि हुए। वे नागलोक में ही बढ़े थे। जनमेजय का जब सर्प सत्र हुआ तो वासुकी नाग ने आस्तीक मुनि को भेजा। पहिले तो द्वारपाल प्रहरियों ने आस्तीक मुनि को भीतर जाने ही न दिया, जब बाहर से ही आस्तीक मुनि राजा की उच्च स्वर में स्तुति करने लगे तब उससे प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें बुलाया और वर माँगने को कहा। आस्तीक मुनि ने सर्प यज्ञ को बंद करने का वर माँगा राजा उन्हें भाँति भाँति के लोभ देकर दूसरा वर माँगने को कह रहे थे। तभी देव गुरु बृहस्पति जी आ गये। उन्होंने भी आस्तीक के वचनों का समर्थन किया। तक्षक और देवेन्द्र को जलाने को मना किया। भावी प्रबल समझकर राजा ने उस सर्प यज्ञ को बन्द कर दिया। तथा बृहस्पतिजी की विधि सहित पूजा की। सब ब्राह्मणों ने राजा को आशीर्वाद दिया। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।"

इसपर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! सभी जानते हैं, प्रारब्ध को कोई मेंट नहीं सकता। फिर भी जब अपने विरुद्ध कोई घटना

होती है तो बड़े बड़े ज्ञानियो को क्रोध आ जाता है, वे भी मोह में फँस जाते हैं, यह क्या बात है ?"

इसपर गम्भीर होकर सूतजी बोले—'भगवन ! इस प्रश्न का न जाने मैंने कितनो बार उत्तर दिया है और न जाने आगे कितनी बार इसी उत्तर को दुहराऊँगा। भगवन यह सब उन सर्वात्मा भगवान् विष्णु की नहीं दिखायी देनेवाली महामाया ही है। जिस माया से भगवान् के अंश भूत जीव इन सत्वादि गुणो की वृत्तियों द्वारा ससार में दिखायी देनेवाले देह, गेह तथा स्वजनादिकों में

विमोहित हो जाते हैं। इस माया को सभी ने अबाधनीया कहा है। भगवान् ही इसका निवारण कर सकें तो यह निवृत्त होती है। इस माया के वशी होकर ही जीव नाना प्रकार के कर्मों को करता है।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इस माया के चक्कर से कैसे बचें! इसका भी हमें कोई सरल सा उपाय बता दीजिये।"

इसपर हँसते हुए सूतजी बोले—"महाराज! चाहें सरल कहो या छुरे की धार कहो इस माया से बचने का एक ही उपाय है।"

शौनक बोले—"वह कौन सा उपाय है सूतजी!"

सूतजी ने कहा—'महाराज! जितनी ये नाना भाँति की अहंकारादि ऊर्मियाँ हैं, इन सब का बाध करके परमात्म पद में लीन हो जाना सर्वात्मा सर्वेश्वर को ही एकमात्र शरण में जाना। माया के समझने के पूर्व माया पति को समझ लेना चाहिये।"

शौनक जी ने कहा—'सूतजी! उन माया पति मायेश के ही सम्बन्ध में हमें समझाइये।"

सूतजी बोले—"भगवन्! श्रुतियों में उन श्री हरि को मायावी कहा है। इन्द्रो मायावी अर्थात् मायावाले। भगवान् के अतिरिक्त माया का अन्य आश्रय ही कहाँ हो सकता है, क्योंकि सर्वाश्रय दाता तो वे प्रभु ही हैं। भगवान् को मायावी मान लेने से फिर माया रहे भी तो वह बुद्धि में स्फुरित नहीं होती। जैसे कोई बाजीगर है, वह भाँति भाँति की माया दिखाकर दर्शकों की बुद्धि में विभ्रम डाल देता है। यदि तुम उस बाजीगर की शरण में जाओ और उस माया का रहस्य समझ लो, तो और लोग भले ही आश्चर्य चकित हो जायँ, किन्तु तुम नहीं हो सकते। फिर वह माया आपके निकट भी न आवेगी आपको फँसावेगी भी नहीं। कोई चोरी करने वाली स्त्री है, वह पहिले आकर तो अपने को सबके

सामने कुलवती प्रकट करती है और लोगों को आँखों में धूल झोंककर चुपके से उन्हें फँसा लेती है उनकी जेब काटती है, किन्तु तुम उसे जान जाओ। और उसे भी विदित हो जाय कि ये हमारे रहस्य को समझ गये, तो फिर वह तुमसे आँखे मिलाना तो दूर रहा पास में भी न फटकेगी दूसरों को भले ही फँसावे आपका कुछ भी न बिगाड़ सकेगी। दूसरे लोग उसके सौंदर्य के विषय में भले ही वाद विवाद करें, किन्तु तुम्हारा तो उसके सम्बन्ध में कोई विवाद रहेगा ही नहीं और न वह तुम्हारे निकट आवेगी ही। इसी प्रकार आत्मवादी गण जब आत्मतत्व का विचार करते हैं, भगवत् तत्व का विमर्श करते हैं, तो वहाँ यह ठगिनी माया निर्भयता पूर्वक नहीं रह सकती। तब यह नाना प्रकार की विचित्र विचित्र संकल्प करने वाला, माया के आश्रित रहनेवाला मन भी नहीं ठहर सकता यह भी वहाँ जाकर शान्त हो जाता है अर्थात इसका भी अन्त हो जाता है।

श्री हरि के स्वरूप में सभी प्रपञ्च विलीन हो जाता है वहाँ न सृष्टि रहती है न सृष्टि को उत्पन्न करने वाले, बढ़ाने वाले और फैलाने वाले उपकरण हो। वहाँ साध्य साधन का भेद भाव भी नहीं रहता। जीव भाव वहाँ सर्वथा विलीन हो जाता है, फिर सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से युक्त अहङ्कार तो ठहर ही नहीं सकता है। उस समय बाध्य बाधक भाव से रहित केवल परमात्म तत्व ही अवशेष रह जाता है। ध्याता और ध्यान एक मात्र ध्येय में एकी भूत हो जाते हैं।

शौनकजी ने पूछा— 'सूतजी! ध्येय क्या है?'

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! आत्मा के अतिरिक्त जितना यह अनात्मभाव है इसका जहाँ जाकर सर्वथा बाध हो जाय। एकमात्र आत्म तत्व ही आत्म तत्व अवशिष्ट रह जाय उसी को मनीषियों ने ध्येय बताया है। उन मनीषियों का परब्रह्म परमात्मा

के अतिरिक्त अन्य किसी में भी प्रेम नहीं होता। वे अति सूक्ष्म बुद्धि से नेति नेति वाक्यों द्वारा अनात्म तत्व का बाध कर देते हैं और एकमात्र सच्चिदानन्द घन विग्रह श्री हरि को ही ध्येय मान कर उमी में सभी का पर्यवसान कर देते हैं। भगवान् वासुदेव के परम पद को माया मोहित प्राणी प्राप्त नहीं कर सकते। जिनमें यह मैं हूँ, यह मेरा घर है, यह मेरी देह है, यह दूसरे की है ऐसी अहंता ममता रूप दुजनता नहीं है। जो समस्त भूतों को एकमात्र आत्मा में ही देखते हैं वे ही इस दुर्लभ परम पद को प्राप्त कर सकते हैं।

शौनक जी ने कहा—"सूत जी ! परम पद तो आपने बताया, फिर भी महाभाग इसे प्राप्त करने का साधन तो बता ही दें। यह सत्य है कि भगवान् की शरण जाने से परम पद की प्राप्ति होती है, किन्तु शरणागत होने की भी तो प्रक्रिया होगी। उसे हमे और बता दें।"

यह सुनकर सूत जी कुछ देर चुप रहे और गम्भीर होकर बोले—"महाराज ! एकबार कहलालें चाहें सहस्र बार। जबतक मन से ईर्ष्या द्वेष नहीं निकलता तब तक परम पद की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जो अज्ञानी लोग हैं वे ऐसे ऐसे कठोर वचन कहते हैं, जो हृदय में आर पार हो जायँ। निंदक और द्वेषी पुरुष सदा पीठ पीछे और सामने भी दूसरों की निंदा करते रहते हैं। दूसरों में राई भर भी दोष होगा तो उसे पहाड की भाँति प्रकट करेंगे। उनकी वाणी में ऐसा विष भरा रहता है, कि जब बोलते हैं कटाक्ष वचन ही बोलते हैं। ऐसे दुर्मुख पुरुषों के दुर्वचनों को जो विना किसी प्रतिकार के सहन कर लेते हैं, और मन में सोच लेते हैं, कि यह सब माया की करतूत है। अपकार करने वाले का भी जो कभी किसी का अहङ्कार में भरकर अपमान नहीं करते, सब बातों को हँसकर टाल देते हैं। जो इस शरीर का आश्रय लेकर

किसी से वैर भाव नहीं करते हैं, वे ही इस परमपद के अधिकारी होते हैं। दुर्जनों के दुर्वचनों को सहना, प्राणीमात्र का हृदय से सम्मान करना और कभी किसी से भूलकर भी वैर न करना यही शरणागत होने की प्रक्रिया है। इन्हीं के द्वारा परमपद की प्राप्ति हो सकती है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! मुझसे जैसी कुछ बनी यह कथा आपसे कही। मेरे गुरु के भी गुरु मेरे पूज्य पितृदेव के भी गुरु भगवान् व्यास देव ने जब वेदों का विभाग किया। अपने पैलादि शिष्यों को संहितायें दीं, तब मेरे पिताजी को भी पुराणों का उपदेश दिया था। सूत जाति के होने से हमलोग मूल वेदों के पठन पाठन के तो अधिकारी हैं नहीं, किन्तु वेदों का अर्थ जो पुराण रूप में कहा गया है, उसके पढ़ने का सुनाने का अधिकार के नाते मैं आप सब के सम्मुख उच्चासन पर बैठकर पुराणों की कथा सुना रहा हूँ। जितने ऋषि पुत्र थे, सबको मेरे बाबा गुरु ने एक एक वेद की संहिता दी। पहिले तो वेद एक ही था। सर्व-साधारण की सुविधा के लिये भगवान् व्यास ने उसे चार भागों में विभक्त किया। फिर उनकी सहस्रों शाखायें बनीं। इस प्रकार एक ही वेद की बहुत सी शाखायें हो गयीं। भिन्न भिन्न शाखाओं के ऋषि अपनी अपनी शाखा का विधि पूर्वक अध्ययन करने लगे। इसी प्रकार पुराण भी पहिले एक ही था। उसे भी १८ भागों में विभक्त कर दिया फिर उप पुराण औपपुराण आदि बने। वेदों का व्यास करने से ही मेरे दादा गुरु वेद व्यास कहलाये।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आपने महाराज परीक्षित् के निधन तक की यह दिव्य कथा सुनायी। अब उपसंहार में हम कुछ प्रश्न आपसे और करना चाहते हैं आपने तो सभी पुराणों को पढ़ा है। अन्य पुराणों के अनुसार हमारे प्रश्नों का उत्तर दें।"

सूतजी ने कहा—"हाँ, महाराज ! आज्ञा करें, मैं यथा मति आपके प्रश्नों का अवश्य उत्तर दूँगा।"

शौनक जी बोले—"पहिले तो आप हमें यह बतावें कि भगवान् व्यास देव ने जो ऋक, यजु, साम और अथर्व वेद की संहितायें अपने पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्तु इन चार शिष्यों को पढ़ायीं। इन चारों वेदाचार्यों ने अपने वेद का शाखाओं में किस प्रकार विभाग किया। किस वेद की कौन कौन सी शाखायें हुईं। जब आप इस प्रश्न का उत्तर दे देंगे, तब हम कुछ प्रश्न आपसे और करेंगे।"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! आपका यह प्रश्न बड़ा ही गूढ़ है। वेदों की अनेकों शाखायें हैं। वे सब अब उपलब्ध भी नहीं हैं। फिर भी मैं यथा मति अत्यन्त संक्षेप में उसका उत्तर दूँगा।"

छप्पय

लागे पढ़िबे मन्त्र इन्द्र सिंहासन हाल्यो।
सुर गुरु मखमहँ आइ नृपहिं समुझाइ निवारयो॥
मानी मुनि की मीख सर्पमख नृप ने त्याग्यो।
दियो द्विजनि उपदेश हिये भूपति के लाग्यो॥
हरि माया अतिशय प्रबल, पावें पार अनन्य हैं।
वैर भाव तजि हरि भजहिं, ते नर जग में धन्य हैं॥